पुरश्चरण(प्रयोग)काण्डे सर्वरोगोपशमनप्रकरणं सप्तमम् ॥ ७ ॥

सर्वरोगोपशमनविधानम्

अथ सूर्यप्रसङ्गात्सर्वरोगोपशमनविधानप्रकरणं लिख्यते; तत्र तावत्सामान्यतः सर्वरोगप्रशमनं महार्णवे—

रोगाः कर्मोद्भवाः केचित्केचिद्दोषसमुद्भवाः। कर्मदोषोद्भवाः केचिदेवं रोगास्त्रिधा स्मृताः॥
ये रोगा नैव शाम्यन्ति कृते ह्यौषधकर्मणि। धर्मेणैवोपशाम्यन्ति ते रोगाः कर्मजाः स्मृताः॥
प्रायश्चित्तेऽपि विहिते न शाम्यन्ति विनौषधम्। ये दृष्टहेतुसम्भूतास्ते रोगा दोषजाः स्मृताः॥
येषां सर्वात्मना हानिर्भवेत्पुण्यैर्न केवलैः। न केवलौषधैर्वापि रोगास्ते कर्मदोषजाः॥
पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये। बाधते व्याधिरूपेण तस्य कृच्छ्रादिभिः शमः॥
पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते। तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादिभिः ॥
रोगहेतौ स्थिते पापे व्याधिः शाम्यति नौषधैः। असाध्यस्यापि रोगस्य प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥

सर्वरोग प्रशमन-विधान—महार्णव में कहा है—कुछ रोग कर्मोद्भव होते हैं। कुछ रोग दोषसमुद्भव होते हैं। कुछ रोग कर्म एवं दोष दोनों से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार रोग तीन कारणों से उत्पन्न होते हैं, ऐसा जानना चाहिये। जो रोग भली-भाँति औषधोपचार करने पर भी शान्त न हों, उन रोगों को कर्मज रोग समझना चाहिये। वे रोग धर्मकार्य (अनुष्ठान) से ही शान्त होते हैं। जो रोग प्रायश्चित्त करने पर भी बिना औषधोपचार के शान्त नहीं होते हैं; जिनका कारण ज्ञात होता है, उन रोगों को दोषज समझना चाहिये। जिन रोगों का सम्पूर्ण नाश न केवल पुण्य से होता है और न केवल औषधोपचार से होता है, वे रोग कर्मदोषज होते हैं। पूर्वजन्मकृत पाप नरक के परिक्षय में रोग के रूप में बाधित होता है, उसकी शान्ति कृच्छ्रतापूर्वक (कठिनाई से) होती है। पूर्व जन्म में किया हुआ पापकर्म व्याधि के रूप में जब बाधा पहुँचाता है तो उसकी शान्ति जप, होम, दान तथा औषधोपचार से करना चाहिये। रोग का हेतु जब पाप होता है तब वह रोग औषधि-सेवन से शान्त नहीं होता है, उस असाध्य रोग की शान्तिहेतु प्रायश्चित्त करना चाहिये।

विमर्श—रोगों के इन प्रकारों को आयुर्वेद के समस्त आचार्यों ने एकमत से स्वीकार किया है तथा इन्हें १. कर्मज, २. दोषज, ३. कर्म दोषोद्भव नाम दिया है—

कर्मजाः कथिता केचिद् दोषजाः सन्ति चापरे। कर्मदोषोद्भवाश्चान्ये व्याधयस्त्रिविधा स्मृताः॥
(भावप्रकाश पू.ख. ६)

जिस रोग का शास्त्रानुसार (आयुर्वेद-एलोपैथी-होम्योपैथी आदि से) निर्णय होने पर उसी शास्त्रविधि से चिकित्सा हुई हो; किन्तु वह फिर भी शान्त न हो तो उसे कर्मज रोग ही मानना चाहिये—

यथाशास्त्रं तु निर्णीतो यथाव्याधिचिकित्सितः। न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्मजो बुधैः॥
(भा० प्र०)

भोगों के द्वारा प्राक्तन अशुभ कर्मों तथा प्रायश्चित्तादि से कर्मज व्याधियों का शमन होता है। यहाँ उपचार में व्यय होने वाले विपुल धन, अरुचिकर औषधियों के सेवन तथा पथ्यपालन से होने वाला कष्ट भी प्राक्तन पापकर्मों

का भोग ही होता है; अतः औषधोपचार तथा प्रायश्चित्तादि दोनों कर्म करना अभीष्ट होता है। पूर्वजन्मकृत कर्म का नाम दैव है; वह दो प्रकार का होता है—१. नियत (विपाकनियत) तथा अनियत (अकालनियत)। जिनका प्रत्यक्ष कारण समक्ष में नहीं आता, वे रोग कर्मज होते हैं। यथा—

निर्दिष्टं दैवशब्देन कर्म यत् पौर्वदेहिकम्। हेतुस्तदपि कालेन रोगाणामुपलभ्यते॥
(चरक शारीर १। ११५)

इस प्रकार से व्यक्ति के पूर्व जन्मों में किये गये दुष्कर्म रोगों का कारण वर्त्तमान शरीर में बनते हैं। ये पूर्वकृत दुष्कर्म आत्माधिष्ठित लिङ्गशरीर के द्वारा ही इस स्थूल शरीर में अवतीर्ण होते हैं। इसी कारण से आयुर्वेद में आत्मा को भी स्थान दिया गया है।

यहाँ लिङ्गशरीर या लिङ्गदेह की व्याख्या आवश्यक है। लिङ्गशरीर क्या है ? भारतीय षड्दर्शनों में शरीर के तीन मुख्य भेद होते हैं—१. स्थूल शरीर, २. सूक्ष्म शरीर तथा ३. कारण शरीर। इनमें स्थूल शरीर से हम सभी परिचित हैं। कारण शरीर त्रिगुणात्मक (सत्व-रज-तम से युक्त) होता है, इसे ही अव्यक्त कहते हैं। इनमें जो सूक्ष्म शरीर है, वह आधार तथा आधेयभेद से दो प्रकार का होता है। सृष्टि के आरम्भ में लिङ्गशरीर समष्टि के रूप में रहता है। ग्यारह इन्द्रियाँ, पञ्च तन्मात्राएँ तथा बुद्धि के साथ लिङ्गशरीर सत्रह तत्त्वों का समुदाय होता है। यह सांख्याचार्य कपिल का मत है। यह लिङ्गशरीर सभी योनियों में निर्बाध रूप से (स्थावर-जंगम-शिला आदि में) प्रवेश कर सकता है। यह सूक्ष्म होने से स्थूल उपकरणों से बद्ध नहीं होता है। यह नियत अर्थात् महाप्रलय-पर्यन्त स्थित रहता है। लय प्राप्त होने के कारण इसका नाम लिङ्गशरीर है। चरक के अनुसार यह लिङ्गदेह एक शरीर से दूसरे माता-पिता से उत्पन्न शरीरों में भ्रमण करता रहता है। पूर्व जन्मकृत शुभाशुभ कर्मों के कारण जो आत्मा में लीन सूक्ष्म भूत (तन्मात्रा) होते हैं, वे भी आत्मा के साथ गर्भ में प्रविष्ट होते हैं।

इस सम्बन्ध में महाराज लोकमान्य तिलक महाराज बहुत स्पष्ट रूप से समझाते हुए (गीतारहस्य में) लिखते हैं—यह तथ्य स्पष्ट है कि जो व्यक्ति बिना ज्ञान प्राप्त किये हुए ही मर जाता है, उसकी आत्मा प्रकृति के चक्र से सदा के लिये छूट नहीं सकती है; क्योंकि यदि ऐसा हुआ तो फिर ज्ञान अथवा शुभाशुभ कर्मों (पाप-पुण्य) का कोई महत्त्व नहीं रह जायेगा। फिर चार्वाक के मतानुसार यह मानना पड़ेगा कि मृत्यु के पश्चात् हर प्राणी मोक्ष प्राप्त कर लेता है। अब यदि यह कहा जाय कि मृत्यु के उपरान्त केवल पुरुष (आत्मा) ही शेष रह जाता है और वही स्वयं नये-नये जन्म लिया करता है तो फिर 'पुरुष अकर्त्ता तथा उदासीन है' यह शास्त्रवाक्य मिथ्या सिद्ध हो जायेगा। इसी प्रकार जब पुरुष (आत्मा) नये-नये जन्म लेता ही रहता है तो फिर इस स्थिति में यह जन्म-मरण के चक्र से छूट ही नहीं सकता है। इसीलिये यह सिद्ध होता है कि यदि कोई मनुष्य बिना ज्ञान की प्राप्ति के देहान्त को प्राप्त हो जाय तो भी अगले जन्मों की प्राप्ति में प्रकृति का सम्बन्ध अवश्य ही होना चाहिये। मृत्यु के उपरान्त यह स्थूल शरीर तो नष्ट हो ही जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि उक्त सम्बन्ध अवश्य स्थूल पाँचभौतिक शरीर के साथ न होकर सूक्ष्म प्रकृति के साथ ही रहता है। प्रकृति केवल स्थूल पञ्चमहाभूतों से नहीं बनी है; अपितु उसके कुल तेईस तत्त्व होते हैं। इनमें से पञ्च महाभूतों को पृथक् कर देने पर शेष अठारह तत्त्व बचते हैं।

अतः यह कहना ही उपयुक्त होगा कि जो पुरुष बिना ज्ञान प्राप्त किये ही मर जाता है, वह यद्यपि पञ्चमहाभूतात्मक स्थूल शरीर से अर्थात् अन्तिम पञ्च तत्त्वों से छूट जाता है तथापि इस प्रकार की मृत्यु के शेष

अठारह तत्त्वों (महत्, अहङ्कार, ग्यारह इन्द्रियाँ तथा पञ्च तन्मात्राएँ) के साथ उसका सम्बन्ध नहीं छूट सकता। ये सब तत्त्व सूक्ष्म हैं; अतएव इन तत्त्वों के साथ पुरुष (आत्मा) का संयोग स्थिर होकर जो शरीर बनता है, उसे स्थूल शरीर के स्थान पर सूक्ष्म शरीर अथवा लिङ्गशरीर कहते हैं। (इस प्रकार) जब कोई व्यक्ति ज्ञानप्राप्ति के बिना ही मर जाता है तब मृत्य के समय उसकी आत्मा के साथ ही प्रकृति के उक्त अठारह तत्त्वों से बना हुआ शरीर (लिङ्गशरीर) भी स्थूल शरीर से निकलकर बाहर आ जाता है और जब तक उस पुरुष को ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती तब तक उसे उस लिङ्गशरीर के ही कारण नये-नये जन्म लेने पड़ते हैं तथा शुभाशुभ कर्मों के फल भोगने पड़ते हैं।

सांख्यकारिका (४०-४१) के अनुसार तिलक महाराज ने लिङ्गशरीर को अठारह तत्त्व-निर्मित स्वीकार किया है—

पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादिसूक्ष्मसूक्ष्मपर्यन्तम्। संसरति निरुपभोगं भावैर्यधिवासितं लिङ्गम्॥
चित्रं यथाश्रयमृते स्थाण्वादिभ्यो विना यथा छाया। तत्तद् विना विशेषैर्न तिष्ठति निराश्रयं लिङ्गम्॥

'लिङ्ग' का अर्थ महत्तत्त्व (बुद्धि) भी होता है; अतः जिस शरीर में बुद्धि (महत्तत्व) की प्रधानता हो, उसे लिङ्ग-शरीर कहा जाता है। अनेक विद्वानों ने तथा कपिल ने भी अहङ्कार को महत्तत्त्व के अन्तर्गत मानकर केवल सत्रह तत्त्वों से युक्त लिङ्गशरीर को कहा है। यथा—'सप्तदशैकं लिङ्गम्' (सांख्यसूत्र)। इस सम्बन्ध में अन्य शास्त्रीय वाक्य भी द्रष्टव्य हैं—'सप्तदश मिलित्वा लिङ्गशरीरम्। तच्च सर्गादौ समष्टिरूपमेकमेव भवतीत्यर्थः। एकादशेन्द्रियाणि। पञ्चतन्मात्राणि बुद्धिश्चेति सप्तदश। अहङ्कारस्य बुद्धावेवान्तर्भावः। कर्मात्मा पुरुषो योऽसौ बन्धमोक्षैः स युज्यते। स सप्तदशकेनापि राशिना युज्यते च सः।' वेदान्तियों ने पञ्चतन्मात्रा के स्थान पर पञ्चप्राणों को ग्रहण किया है—

पञ्चप्राण मनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम्। अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम्॥

कर्मज व्याधियों की तिब्बती लामाओं द्वारा मान्यता—भारतीय आयुर्वेद के कर्मज व्याधि सिद्धान्त को तिब्बती लामाओं ने यथाविधि मान्यता प्रदान की है। उन्होंने चार प्रकार के कारणों से रोगों का होना स्वीकार किया है। तिब्बती भाषा में रोग को 'नद्' अथवा 'नद्-बा' कहते हैं। रोगों के चार कारण तिब्बती वैद्य लामाओं के अनुसार निम्नाङ्कित हैं—

१. ग्झाङ्-द्वाङ्स्नगोङ्-नद् अर्थात् कर्मज व्याधियाँ पूर्वजन्म के पापों से होती हैं। इनका उपचार किसी उच्च साधना वाले लामा द्वारा ही मन्त्र-तन्त्रादि से होता है। जब कोई रोग (नद्) सम्यक् औषधोपचार से शान्त न हो, तब उसे कर्मज व्याधि माना जाता है।

२. कुङ्-ब्रताग्स्-ग्दोङ्-नद् अर्थात् अमानुष रोग—यह प्रेतात्मा आदि के प्रकोप से होते हैं; जैसे उन्माद अपस्मार आदि। इनके लिये मन्त्रोपचार तथा औषधसिद्ध घृतों का सहयोग लिया जाता है।

३. ल्तार-स्नाङ्, फ्राल्-नद् अर्थात् आकस्मिक रोग—ये प्रायः तीव्रता से आते हैं और बिना औषधियों के ठीक हो जाते हैं; जैसे—प्रतिश्याय आदि।

४. योङ्स्-ग्रुब, त्शे-नाद् अर्थात् दोषज रोग—ये अच्छी प्रकार से औषधोपचार करने पर ठीक हो जाते हैं।

सर्वरोगविनाशाय जपः कार्यो विशेषतः। मृत्युञ्जयस्य रुद्रस्य होमं कुर्याद्दशांशतः॥
आगमोक्तविधानेन रोगनाशो भवेद्ध्रुवम्। सर्वरोगोपशान्त्यर्थमभिषेकं समाचरेत्॥
सहस्रकलशैः स्नानं विष्णोर्वा शङ्करस्य च। देवमभ्यर्च्य विप्रेभ्यो दद्यान्मिष्टान्नभोजनम्॥
तेभ्यश्च दक्षिणां दत्त्वा रोगेभ्यो मुच्यते ध्रुवम्। कार्यः षडङ्गरुद्रस्य जपो वा रोगशान्तये॥
महारुद्रविधानेनासाध्यो रोगोऽपि शाम्यति। अपामार्जनसंज्ञेन मालामन्त्रेण मार्जयेत्॥
मार्जनाद्रोगिणः सर्वे रोगा नश्यन्त्यसंशयम्। अच्युतानन्तगोविन्देत्येवं नामत्रयं हरेः॥
सर्वरोगोपशान्त्यर्थं सततं व्याधिमान् जपेत्। सर्वेषु ज्ञातरोगेषु प्रदद्यात्सततं नरः॥
पानीयं पायसं मुद्गाः शर्करां घृतसंयुताम्। प्रतिकूलग्रहाणां च जपं होमं च पूजनम्॥
तत्तद्दोषविनाशार्थं दानं कुर्य्याद्यथोदितम्। प्रतिरोगं च यद्दानं जपहोमादि कीर्तितम्॥
प्रायश्चित्तं तु तत्कृत्वा चिकित्सामारभेत्ततः। प्रदद्यात्सर्वरोगघ्नं छायापात्रं विधानतः॥

सर्वकर्मज व्याधियों के प्रशमनहेतु उपाय—सभी कर्मज व्याधियों के नाशहेतु मृत्युञ्जयजप अथवा रुद्रजप करना चाहिये। जप का दशांश हवन करना चाहिये। तन्त्रोक्त विधान से सर्वरोग-शान्त्यर्थ अभिषेक करना चाहिये। भगवान् विष्णु या शङ्कर का सहस्रधारा अभिषेक करके ब्राह्मणों को मिष्ठान्न भोजन देना चाहिये। उनको दक्षिणा देकर षडङ्गरुद्र का जप भी रोगशान्ति के लिये करना चाहिये। महारुद्र के विधान से असाध्य रोग भी साध्य हो जाते हैं। अपामार्जन स्तोत्र के मार्जन करने से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं है। हरि के तीन नाम—अच्युत-अनन्त तथा गोविन्द; इनको व्याधि से पीड़ित व्यक्ति को जपना चाहिये। इनका जप सभी रोगों से पीड़ित रोगी कर सकते हैं। पानीय, पायस, मूंग का यूष—इनको घी एवं शक्कर मिलाकर तथा प्रतिकूल ग्रहों का जप होमपूजन करे। उनके दोष के नाशन के लिये जो जप-दान-होम कहा गया है, उसका रोगानुसार प्रयोग करना चाहिये। प्रायश्चित्त करके फिर चिकित्सा आरम्भ करनी चाहिये। समस्त रोगों को नष्ट करने वाला छायापात्र दान करना चाहिये।

छायापात्रविधानम्—

चतुःषष्टिपलैः कांस्यभाजने निर्मिते शुभे। घृतेनापूरिते तत्र स्वर्णं निष्कं विनिक्षिपेत्॥
तत्राज्ये स्वतनोश्छाया आपादतलमस्तकम्। दृष्ट्वा रोगी ततो दद्याद्ब्राजनं तद्द्विजन्मने॥
पूजिताय विधानेन ततो दद्याच्च दक्षिणाम्। पक्षोऽयमुत्तमः प्रोक्तः कांस्यपात्रसुवर्णयोः॥
दद्याद्वित्तानुसारेण पात्रं स्वर्णं च बुद्धिमान्।

दानमन्त्रः—

आयुर्बलं यशो वर्च्च आज्यं स्वर्णं तथाऽमृतम्। आधारं तेजसा यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥
मन्त्रेणानेन विप्राय सर्वरोगोपशान्तये। पात्रं सुवर्णसहितं दद्यात्सङ्कल्पपूर्वकम्॥

छायापात्र विधान—चौंसठ पल कांसा (२५६ तोले = लगभग ३ किलो) भार का कांस्य पात्र (कटोरा) बनवाकर उसे घी से भरकर उसमें एक निष्क स्वर्ण डालकर उस पिघले हुए घी में अपने शरीर की छाया रोगी देखे। छाया खड़े होकर आपादतल मस्तक कांस्य का छायापात्र दान उत्तम कहा गया है। यदि इतना सामर्थ्य न हो तो बुद्धिमान् मनुष्य अपने आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार कांस्य तथा सुवर्ण का दान करे। दानमन्त्र है—'आयुर्बलं

यशोवर्चं आज्यं स्वर्णं तथाऽमृतम्। आधारं तेजसा यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥' इस मन्त्र से समस्त रोगों की शान्ति के लिये ब्राह्मण को सङ्कल्पपूर्वक कांस्य पात्र को सुवर्णसहित दान कर देना चाहिये।

व्याधिप्रतिरूपदानविधानम्—

दद्यात्सर्वामयव्याधिप्रतिरूपं निवृत्तये। सुवर्णेन सरत्नेन रौप्येणापि स्वशक्तितः॥ २३॥
निर्मितं च शतैकेन निष्काणां वा तदर्द्धतः। त्रिंशता वा यथाशक्ति दद्यादुक्तविधानतः॥ २४॥
तण्डुलैः पूरिते व्याधिप्रतिरूपं सुभाजने। निधायावेष्ट्य वस्त्रेण समलङ्कृत्य भूषणैः॥ २५॥
समभ्यर्च्यार्थ विप्राय पूजिताय निवेदयेत्। पठन्मन्त्रमिमं व्याधिप्रतिरूपमथोत्सृजेत्॥ २६॥
ये मां रोगाः प्रबाधन्ते देहस्थाः सततं मम। गृह्णीष्व प्रतिरूपेण तान्रोगान्द्विजसत्तम॥ २७॥
बाढमित्येव तद्रूपं गृह्णीयाद्ब्राह्मणस्तदा। ततो रोगप्रदातासौ दीर्घमायुः प्रपद्यते॥ २८॥
तण्डुलानां तु यत्पात्रं मुख्यं तत्कांस्यसम्भवम्। दत्त्वा दानं तु तत्काले द्विजास्यं नावलोकयेत्॥ २९॥

इति व्याधिप्रतिरूपदानम्। प्रायेण सूर्यः सर्वेषां रोगाणामधिदैवतम्। आरोग्यं भास्करादिच्छेदिति प्रख्या श्रुतिः स्मृतिः। इति सामान्यतः सर्वरोगशमनविधानम्।

व्याधिप्रतिरूप का दान—रत्नसहित सुवर्ण तथा रौप्य से अपनी शक्ति के अनुसार व्याधि का प्रतिरूप बनवाकर सभी रोगों की निवृत्ति के लिये दान करना चाहिये। एक सौ निष्क अथवा पचास निष्क अथवा तीस निष्क अथवा यथाशक्ति भार चाँदी या सुवर्ण का व्याधिप्रतिरूप उक्त विधान से बनवाकर, उसे चावलों से भरे श्रेष्ठ पात्र में रखकर वस्त्र से ढककर आभूषणों से अलंकृत कर, उसकी पूजा करके सद्ब्राह्मण को पूजकर निवेदित करे तथा इस मन्त्र को पढ़ते हुए दान करे, 'ये मां रोगा प्रबाधन्ते देहस्थाः सततं मम। गृह्णीष्व प्रतिरूपेण तान् रोगान् द्विजसत्तम॥' तब ब्राह्मण 'बढ़िया' कहकर उस व्याधिप्रतिरूप को ग्रहण कर ले; इससे वह दान करने वाला रोगी दीर्घायु हो जाता है। जिस पात्र में चावल भरकर दान किया जाय, वह पात्र कांसे का बना होना चाहिये। उस पात्र को दान करने के पश्चात् रोगी को उस दान-गृहीता ब्राह्मण को नहीं देखना चाहिये॥ २३-२९॥

विमर्श—तिब्बत में तथा तिब्बतियों में मन्त्र-तन्त्रों के अनुष्ठानों तथा तान्त्रिक विधि से निर्मित औषधियों का प्रचलन अधिक मात्र में विद्यमान है। वहाँ जो वैद्य तैयार किये जाते हैं, उन्हें तान्त्रिक मन्त्र-यन्त्र एवं प्रार्थनाओं का अध्ययन कराया जाता है। यह परम्परा वज्रयान सम्प्रदाय (मन्त्रयान अथवा तन्त्रयान) के पूर्व से ही चली आ रही है। विलियम स्टाबलिन नामक पाश्चात्य लेखक ने विस्तारपूर्वक इस विषय में अपनी पुस्तक Tibetan Medical-Cultural System में लिखा है—

There are usually three of medicine created, and these correspond to the outer, inner and secret levels of disease. The outer one is a pill made of eight Ayurvedic ingredients charged with the blessing of the deity. The inner one is torma (gtorma), ritual offering cake. These torma are made in the shapes of ears, nose etc. and they represent the body purified by the eight inner substances which promote bodily growth. The secret medicine is represented by eight sexual aspects of subtle body, four from the male and four from the female.

तिब्बती तन्त्रशास्त्र के अनुसार मन्त्र तब तक अपना प्रभाव नहीं करते, जब तक कि उन्हें गुरु से दीक्षा लेकर सिद्ध न कर लिया जाय। यदि उन्हें बिना समझे तोते की भाँति रटा जाय तो वे प्रभाव नहीं करते हैं; अतः उन्हें

किसी लामा गुरु से दीक्षा लेकर सिद्ध करना आवश्यक होता है। अतः उन्हें पुस्तक में पढ़कर नहीं सीखना चाहिये—

By practicing the recitaion of mantras, one can read just the vibrational harmony of the subtle body and realise it as the Buddha body. But learning a mantra out of a book and practicing it without empowerment dosen't usually work. Most mantras must be received in initiation from the master or Lama either in actual experience or by more mystical means. Further, mantras have no power if they are repeated mindlessly like parrot—Tibetan Buddhist Medicine page 79.

ज्वरशमनविधानम्

महार्णवे गार्ग्यः—

ये पुनः क्रूरकर्माणः पापाः पिशुनचेतसः। ते भवेयुः सदा शीतज्वरवन्तश्च तत्पराः॥
शान्तयेऽयुतसङ्ख्याकं कुर्य्यात्तु प्रयतो जपम्। जातवेदसमन्त्रेण ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः॥
सुरामांसोपहाराद्यैर्बलिः सर्वत्र शस्यते। सहस्रकलशस्नानं शतभोजनमेव च॥

ज्वरशमन का मन्त्रात्मक विधान—महार्णव में गार्ग्य का वचन है—जो क्रूरकर्मा, पापकर्मा तथा चुगलखोर हैं, उन्हें सदैव रहने वाला शीतज्वर उत्पन्न होता है, उसकी शान्ति के लिये अयुत (दस सहस्र) की संख्या में 'जातवेदस मन्त्र' का जप करना चाहिये तथा जप-होमादि के पूर्ण होने पर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। ज्वर के लिये सुरा-मांस आदि उपहारों की बलि देकर सहस्रकलशस्नान तथा एक सौ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये।

माहेश्वरतन्त्रेऽपि—

उष्णज्वरे महेशस्य प्रकुर्यादभिषेचनम्। शीतज्वरे तथा कुर्यादभिषेकं हरेर्बुधः॥

माहेश्वर तन्त्र में कहा है—उष्ण ज्वर होने पर श्री शङ्कर का अभिषेक करे तथा शीत ज्वर में बुद्धिमान् को श्री विष्णु जी का अभिषेक करना चाहिये।

कर्मविपाकसङ्ग्रहेऽपि—

माङ्गल्येषु च कार्येषु सततं कोपवान्नरः। उष्णज्वराभिभूतः स्यात्तत्पापस्यापनुत्तये॥
सहस्रकलशस्नानं रुद्रेणेशस्य कारयेत्। ब्राह्मणाञ्भोजयेच्छक्त्या जपेद्वै जातवेदसम्॥

कर्मविपाकसंग्रह में भी कहा है—जो व्यक्ति माङ्गलिक कार्यों एवं उत्सवों में सदैव क्रोधित होता रहता है, वह उष्णज्वर से पीड़ित होता है। उसके पापफल की निवृत्ति के लिये रुद्र से सहस्र कलशस्नान रुद्र को कराकर यथाशक्ति भोजन कराना चाहिये। अथवा जातवेदस मन्त्र का जप कराना चाहिये।

महार्णवे शातातपः—

देवस्वग्रहणाच्चैव जायते विविधज्वरः। ज्वरो महाज्वरश्चैव रौद्रो वैष्णव एव च॥
ज्वरे रुद्रजपं कुर्य्यान्महारुद्रं महाज्वरे। महारुद्रं जपेद्रौद्रे वैष्णवे तद्द्वयं जपेत्॥ इति।
रुद्रातिरुद्रमहारुद्राणि शिवानुष्ठानप्रकरणे दर्शितानि।

महार्णव में शाततप का वचन है—देवस्व (मन्दिर तथा देवता के धन-सम्पत्ति) को ग्रहण या हरण करने से विविध प्रकार के ज्वर होते हैं—ज्वर, महाज्वर, रौद्रज्वर, वैष्णवज्वर आदि। सामान्य ज्वर में रुद्रजप तथा महाज्वर

में महारुद्र का जप-अनुष्ठान कराना चाहिये। रुद्रज्वर में महारुद्र का वैष्णवज्वर में महारुद्र तथा रुद्र दोनों का जप करना चाहिये। रुद्र, अतिरुद्र तथा महारुद्रों की जपविधि पीछे शिवानुष्ठान प्रकरण में बताई जा चुकी है।

ज्वरशमनमन्त्रविधानम्

मन्त्रो यथा—

त्रिपाद्भस्मप्रहरणस्त्रिशिराश्च त्रिलोचनः। स मे प्रीतः सुखं दद्यात्सर्वामयपतिज्वरः॥

अस्य श्रीज्वरमन्त्रस्य कालाग्निरुद्र ऋषिः। महादेवो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। सकलज्वरशान्त्यर्थे जपे विनियोगः। ततः पूर्वोक्तऋष्यादिन्यासं ध्यानं च कृत्वा यथाविधि अयुतं सहस्रं वा जपेत्। जपान्ते होमतर्पणादि कुर्यात्। अथवा ज्वर-गायत्रीं जपेत्। तद्यथा—

ॐ भस्मायुधाय विद्महे ऐं क्रीं एकदंष्ट्राय धीमहि, तन्नो ज्वरः प्रचोदयात्— इति ज्वरगायत्री।

ज्वरमन्त्र-जप-विधान—'त्रिपाद्भस्मप्रहरणः त्रिशिराश्च त्रिलोचनः। स मे प्रीतः सुखं दद्यात् सर्वामयपतिज्वरः' यह ज्वरशामक मन्त्र है। इस ज्वरमन्त्र के कालाग्नि रुद्र ऋषि हैं। महादेव देवता हैं तथा अनुष्टुप् छन्द है। सकल ज्वरों की शान्ति में इसका विनियोग है। इस भाव का मूल में लिखित मन्त्र का प्रयोग विनयोग में करे तथा—'ॐ कालाग्निरुद्रऋषये नमः शिरसि, महादेवदेवतायै नमः हृदये, अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे' इन तीन मन्त्रों से ऋष्यादि न्यास करे। फिर मूल मन्त्र 'त्रिपाद्भस्म०' इत्यादि के अनुसार ध्यान करके विधिपूर्वक इसी मन्त्र का जप एक अयुत (दश सहस्र) अथवा एक सहस्र करे। जप के अन्त में दशांश होम तर्पणादि भी करे। अथवा इसी विधान से 'ॐ भस्मायुधाय विद्महे ऐं क्रीं एकदंष्ट्राय धीमहि, तन्नो ज्वरः प्रचोदयात्' इस ज्वरगायत्री का जप (एक अयुत की संख्या में) करना चाहिये।

जातवेदसमन्त्रानुष्ठानप्रयोगः

पूर्वदिने पूर्वोक्तप्रायश्चित्तं कृत्वा प्रारम्भदिने प्रातर्नित्यावश्यकं समाप्य सुमुहूर्त्ते शिवालयादिपवित्रस्थले स्वासने प्राङ्मुख उपविश्य आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ सङ्कीर्त्य 'अमुकगोत्रोऽमुकशर्माहं मम (यजमानस्य वा) उत्पन्नज्वरस्य अमुकव्याधेर्वा जीवच्छरीराऽविरोधेन समूलनाशार्थं सद्य आरोग्यार्थं जातवेदस इति मन्त्रस्यामुकसङ्ख्यया जपं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य भूतशुद्धिं प्राणप्रतिष्ठामन्तर्मातृकाबहिर्मातृकान्यासं च कृत्वा मूलमन्त्रन्यासादिकर्म्म कुर्य्यात्। मूलमन्त्रो यथा—ॐ जातवेदसेसुनवामसोममरातीयतोनिर्दहातिवेदः। सनःपर्षदतिं दुर्गाणिविश्वानावेवसिन्धुं दुरितात्यग्निः॥' इति चतुश्चत्वारिंशद्वर्णात्मको मन्त्रः। ॐ जातवेदसः इति मन्त्रस्य मारीचः काश्यप ऋषिः। त्रिष्टुपुछन्दः। जातवेदोग्निर्दुर्गादेवता। रोगशमने विनियोगः। ॐ मारीचकाश्यपऋषये नमः शिरसि॥ १॥ ॐ त्रिष्टुपुछन्दसे नमः मुखे॥ २॥ ॐ जातवेदोग्निदुर्गादेवताभ्यां नमः हृदये॥ ३॥ इति ऋष्यादिन्यासः। ॐ जातवेदसेसुनवाम् इत्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः॥ १॥ ॐ सोममरातीयतो इति तर्जनीभ्यां नमः॥ २॥ ॐ निदहाति वेदः इति मध्यमाभ्यां नमः॥ ३॥ ॐ सनः पर्षदति अनामिकाभ्यां नमः॥ ४॥ ॐ दुर्गाणिविश्वानावेव इति कनिष्ठिकाभ्यां नमः॥ ५॥ ॐ सिन्धुं दुरितात्यग्निरिति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः॥ ६॥ इति करन्यासः। एवमेव हृदयादिषडङ्गन्यासं कुर्य्यात्।

अथ मन्त्रवर्णन्यासः—ॐ नमः दक्षिणपादाङ्गुष्ठे॥ १॥ ॐ जां नमः वामपादाङ्गुष्ठे॥ २॥ ॐ तं नमः दक्षगुल्फे॥ ३॥ ॐ वें वामगुल्फे॥ ४॥ ॐ दं नमः दक्षिणजङ्घायाम्॥ ५॥ ॐ सें नमः वामजङ्घायाम्॥ ६॥ ॐ सुं नमः दक्षिणजानुनि॥ ७॥ ॐ नं नमः वामजानुनि॥ ८॥ ॐ वां नमः दक्षिणोरौ॥ ९॥ ॐ मं नमः वामोरौ॥ १०॥ ॐ सों नमः दक्षकट्याम्॥ ११॥ ॐ मं नमः वामकट्याम्॥ १२॥ ॐ मं नमः लिङ्गे॥ १३॥ ॐ रां नमः नाभौ॥ १४॥ ॐ तीं नमः

हृदये॥ १५॥ ॐ यं नमः दक्षस्तने॥ १६॥ ॐ तों नमः वामस्तने॥ १७॥ ॐ निं नमः दक्षपार्श्वे॥ १८॥ ॐ दं नमः वामपार्श्वे॥ १९॥ ॐ हां नमः पृष्ठे॥ २०॥ ॐ तिं नमः दक्षस्कन्धे॥ २१॥ ॐ वें नमः वामस्कन्धे॥ २२॥ ॐ दं नमः दक्षिणबाहुमूले॥ २३॥ ॐ सं नमः दक्षबाहुमूलकूर्परयोर्मध्ये॥ २४॥ ॐ नं नमः दक्षकूर्परे॥ २५॥ ॐ पं नमः कूर्परमणिबन्धयोर्मध्ये॥ २६॥ ॐ सं नमः दक्षमणिबन्धे॥ २७॥ ॐ दं नमः अङ्गुष्ठमूलप्रदेशे॥ २८॥ ॐ तिं नमः वामबाहुमूले॥ २९॥ ॐ दुं नमः वामबाहुमूलकूर्परयोर्मध्ये॥ ३०॥ ॐ र्गां नमः वामकूर्परे॥ ३१॥ ॐ णिं नमः वामकूर्परमणिबन्धयोर्मध्ये॥ ३२॥ ॐ विं नमः वाममणिबन्धे॥ ३३॥ ॐ श्वां नमः अङ्गुष्ठमूलप्रदेशे॥ ३४॥ ॐ नां नमः मुखे॥ ३५॥ ॐ वें नमः दक्षनासायाम्॥ ३६॥ ॐ वं नमः वामनासायाम्॥ ३७॥ ॐ सिं नमः दक्षिणनेत्रे॥ ३८॥ ॐ धुं नमः वामनेत्रे॥ ३९॥ ॐ दुं नमः दक्षिणकर्णे॥ ४०॥ ॐ रिं नमः वामकर्णे॥ ४१॥ ॐ तौ नमः ललाटे॥ ४२॥ ॐ त्यं नमः ललाटोपरिभागे॥ ४३॥ ॐ ग्रिं नमः मूर्ध्नि॥ ४४॥ इति वर्णन्यासः।

अथ पदन्यासः—ॐ जातवेदसे नमः शिखायाम्॥ १॥ ॐ सुनवाम नमः ललाटे॥ २॥ ॐ सोमं नमो नेत्रयोः॥ ३॥ ॐ अरातीयतः नमः कर्णयोः॥ ४॥ ॐ निदहाति नमः ओष्ठयोः॥ ५॥ ॐ वेदः नमः जिह्वायाम्॥ ६॥ ॐ सनः नमः कण्ठे॥ ७॥ ॐ पर्षत् नमः बाह्वोः॥ ८॥ ॐ अति नमः हृदये॥ ९॥ ॐ दुर्गाणि नमः कुक्षौ॥ १०॥ ॐ विश्वा नमः कटौ॥ ११॥ ॐ नावेव नमः गुह्ये॥ १२॥ ॐ सिंधुं नमः ऊर्वोः॥ १३॥ ॐ दुरिता नमः जानुनोः॥ १४॥ ॐ अति नमः जङ्घयोः॥ १५॥ ॐ अग्नि नमः पादयोः॥ १६॥ एवं न्यासं कृत्वा ध्यायेत्—

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापाङ्कुशं तर्जनीं बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां स्मरेत्॥

एवं ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य पीठपूजां कुर्यात्।

जातवेद मन्त्र का अनुष्ठान—अनुष्ठान आरम्भ करने के लिये जो मुहूर्त निश्चित किया गया हो, उसके एक दिन पूर्व प्रायश्चित्त कर्म कर लेना चाहिये तथा जिस दिन प्रारम्भ करने का मुहूर्त हो, उस दिन प्रातः शीघ्र उठकर आवश्यक नित्यकर्मों को निपटा कर शुभ मुहूर्त में किसी शिवालय आदि पवित्र स्थान में अपने आसन पर पूर्व की ओर मुख करके अथवा उत्तराभिमुख बैठकर तथा आचमन एवं प्राणायाम करके देश-काल का उच्चारण करके 'अमुकगोत्रोऽमुकशर्माहं मम (यजमानस्य वा) उत्पन्नज्वरस्य अमुकव्याधेर्वा जीवच्छरीराविरोधेन समूलनाशार्थं सद्य आरोग्यार्थं जातवेदस इति मन्त्रस्य अमुकसङ्ख्यया जपं करिष्ये' ऐसा सङ्कल्प करके भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, अन्तर्मातृकान्यास, बहिर्मातृकान्यास तथा मूल मन्त्र का वर्णन्यास एवं पदन्यास आदि करना चाहिये।

'ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहातिवेदः। सनः पर्षदति दुर्गाणि विश्वानावेवसिन्धुं दुरितात्यग्निः।' यह मूल मन्त्र है, जिसमें चौवालीस वर्ण हैं। सर्वप्रथम 'ॐ जातवेदस०' इति मन्त्रस्य मारीचः काश्यपः ऋषिः। त्रिष्टुप् छन्दः। जातवेदोऽग्निर्दुर्गा देवता। रोगशमने विनियोगः' इस मन्त्र से विनियोग करना चाहिये। फिर 'ॐ मारीचकाश्यपऋषये नमः शिरसि, ॐ त्रिष्टुप्छन्दसे नमः मुखे, ॐ जातवेदो अग्निदुर्गादेवताभ्यां नमः हृदये' इन मन्त्रों से ऋष्यादि न्यास सम्पन्न कर मूलोक्त 'ॐ जातवेदसे सुनवाम इत्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः' इत्यादि छः मन्त्रों से करन्यास करना चाहिये। तदुपरान्त 'ॐ जातवेदसे सुनवाम हृदयाय नमः, ॐ सोममरातीयतो इति शिरसे स्वाहा, ॐ निदहाति वेदः इति शिखायै वषट्, ॐ सनः पर्षदति कवचाय हुम्, ॐ दुर्गाणि विश्वानावेव इति नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ सिन्धुं दुरितात्यग्निरिति अस्त्राय फट्' इन छः मन्त्रों से हृदयादि षडङ्गन्यास करना चाहिये।

फिर मूल में लिखे 'ॐ नमः दक्षिणपादाङ्गुष्ठे' इत्यादि चौवालीस मन्त्रों से उन मन्त्रों के आगे निर्दिष्ट शरीर के अङ्गों में मन्त्र के चौवालीस अक्षरों का न्यास करना चाहिये। फिर उसके आगे लिखे ॐ 'ॐ जातवेदसे नमः शिखायाम्' इत्यादि १६ (सोलह) मन्त्रों से उनमें निर्दिष्ट अङ्गों में पदन्यास करने के उपरान्त मूलोक्त

'विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां कन्याभिः करवालखेटविलसद् हस्ताभिरासेविताम्। हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापाङ्कुशं तर्जनीं बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे॥' इस श्लोक के अनुसार ध्यान करना चाहिये। ध्यान का भावार्थ है—'बिजली की चमक के समान प्रभा वाली, सिंह के कन्धों पर सवार, भीषण स्वरूप वाली, कन्याओं के द्वारा ली गई तलवारों से सुशोभित, अपने हाथों में तलवार, गदा, चक्र, खेट, धनुष, बाण, अङ्कुश, तर्जनी घुमाती हुई, अग्निरूपा, शशिधरा, त्रिनेत्रा दुर्गा का स्मरण करे।' इस प्रकार ध्यान करके मानसोपचारों से पूजकर पीठ-पूजा करनी चाहिये।

तद्यथा—(मण्डले सर्वतोभद्रे षट्कोणाङ्कितकर्णिके विधिना वक्ष्यमाणेन पीठं देव्याः प्रपूजयेत्) मण्डूकादिपरतत्त्वान्तपीठदेवताः पूर्ववत्सम्पूज्य प्राचीक्रमेण—ॐ जयायै नमः॥ १॥ ॐ विजयायै नमः॥ २॥ ॐ भद्रायै नमः॥ ३॥ ॐ भद्रकाल्यै नमः॥ ४॥ ॐ सुमुख्यै नमः॥ ५॥ ॐ दुर्मुख्यै नमः॥ ६॥ ॐ ॐ व्याघ्रमुख्यै नमः॥ ७॥ ॐ सिंहमुख्यै नमः॥ ८॥ मध्ये—ॐ दुर्गायै नमः॥ ९॥ इति नवपीठशक्तीः पूजयेत्। ततः 'ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः' इति मन्त्रेणासनं दत्त्वा तत्र मूलेन मूर्तिं प्रकल्प्य तस्यां देवतामावाह्य पाद्यादिपुष्पान्तैरुपचारैः सम्पूज्य आवरणपूजां कुर्य्यात्।

तद्यथा—षट्कोणे आग्नेयादिकोणकेसरेषु मध्ये दिक्षु च पूर्वोक्तहृदयादिषडङ्गानि पूजयेत्। तद्बाह्येऽष्टदले प्राचीक्रमेण—ॐ जातवेदसे नमः॥ १॥ ॐ सप्तजिह्वाय नमः॥ २॥ ॐ हव्यवाहनाय नमः॥ ३॥ ॐ अश्वोदरजाय नमः॥ ४॥ ॐ वैश्वानराय नमः॥ ५॥ ॐ कौमारतेजसे नमः॥ ६॥ ॐ विश्वमुखाय नमः॥ ७॥ ॐ देवमुखाय नमः॥ ८॥ इति पूजयेत्।

ततः पूर्वादिचतुर्दिक्षु—ॐ पृथिव्यै नमः॥ १॥ ॐ अद्भ्यो नमः॥ २॥ ॐ वायवे नमः॥ ३॥ ॐ आकाशाय नमः॥ ४॥ इति सम्पूज्य कोणदलाग्रेषु—ॐ निवृत्त्यै नमः॥ ५॥ ॐ प्रतिष्ठायै नमः॥ ६॥ ॐ शान्त्यै नमः॥ ७॥ ॐ शान्त्यतीतायै नमः॥ ८॥ इति पूजयेत्। ततः पूर्वादिचतुर्दिक्षु प्रदक्षिणक्रमेण एकादशैकादशशक्तयः पूज्यास्तद्यथा पूर्वे—ॐ जाग्रतायै नमः॥ १॥ ॐ तपन्यै नमः॥ २॥ ॐ वेदगर्भायै नमः॥ ३॥ ॐ दहनरूपिण्यै नमः॥ ४॥ ॐ सेन्दुखण्डायै नमः॥ ५॥ ॐ अशुभहन्त्र्यै नमः॥ ६॥ ॐ नभश्चारिण्यै नमः॥ ७॥ ॐ वागीश्वर्यै नमः॥ ८॥ ॐ मदवहायै नमः॥ ९॥ ॐ सोमरूपायै नमः॥ १०॥ ॐ मनोजवायै नमः॥ ११॥ इति पूजयेत्।

ततो दक्षिणे—ॐ मरुद्वेगायै नमः॥ १॥ ॐ रात्रिसंज्ञायै नमः॥ २॥ ॐ तीव्रकोपायै नमः॥ ३॥ ॐ यशोवत्यै नमः॥ ४॥ ॐ तोयात्मिकायै नमः॥ ५॥ ॐ नित्यायै नमः॥ ६॥ ॐ दयावत्यै नमः॥ ७॥ ॐ हारिण्यै नमः॥ ८॥ ॐ तिरस्क्रियायै नमः॥ ९॥ ॐ वेदमात्रे नमः॥ १०॥ ॐ तत्परायै नमः॥ ११॥ इति पूजयेत्।

पश्चिमे—ॐ मदनप्रियायै नमः॥ १॥ ॐ समाराध्यै नमः॥ २॥ ॐ नन्दिन्यै नमः॥ ३॥ ॐ रिपुमर्दिन्यै नमः॥ ४॥ ॐ षष्ठ्यै नमः॥ ५॥ ॐ दण्डिन्यै नमः॥ ६॥ ॐ तिग्मायै नमः॥ ७॥ ॐ दुर्गायै नमः॥ ८॥ ॐ गायत्र्यै नमः॥ ९॥ ॐ निरवद्यायै नमः॥ १०॥ ॐ विशालाक्ष्यै नमः॥ ११॥ इति पूजयेत्।

उत्तरे—ॐ श्वासोद्वाहायै नमः॥ १॥ ॐ वनादिन्यै नमः॥ २॥ ॐ वेदनायै नमः॥ ३॥ ॐ वह्निगर्भायै नमः॥ ४॥ ॐ सिंहवाहायै नमः॥ ५॥ ॐ धुर्यायै नमः॥ ६॥ ॐ दुर्विषहायै नमः॥ ७॥ ॐ गिरंसायै नमः॥ ८॥ ॐ तापहारिण्यै नमः॥ ९॥ ॐ त्यक्तदोषायै नमः॥ १०॥ ॐ निस्सपत्नायै नमः॥ ११॥ इति पूजयेत्।

ततो भूपुरे पूर्वादिक्रमेण इन्द्रादीन् दशदिक्पालान् तद्बाह्ये वज्राद्यायुधानि च पूजयेत्। एवमावरणपूजां कृत्वा धूपादिनमस्कारान्तं सम्पूज्य यथाविधि जपं कुर्यात्।

पीठपूजा—(सर्वतोभद्रमण्डल में षट्कोणाङ्कित कर्णिका में वक्ष्यमाण पीठ देवी का पूजन करे।) 'मण्डूकादिपरतत्त्वान्तपीठदेवताभ्यो नमः' कहकर पीठ का पूजन कर मूलोक्त 'ॐ जयायै नमः' इत्यादि ९ मन्त्रों से

नौ पीठशक्तियों की पूजा करे। फिर 'ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः' इस मन्त्र से आसन देकर मूलमन्त्र से मूर्ति की कल्पना कर उसमें देवताओं का आवाहन कर पाद्यादि पुष्पान्त उपचारों से पूजा कर आवरण-पूजा करनी चाहिये।

आवरणपूजा—षट्कोण में आग्नेयादि कोणकेसरों में, मध्य में तथा दिशाओं में पूर्वोक्त हृदयादि छः अङ्गों का पूजन कर उसके बाहर अष्टदल कमल में प्राचीक्रम से 'ॐ जातवेदसे नमः' इत्यादि आठ मन्त्रों से पूजा करे। फिर पूर्वादि दिशाओं में प्रदक्षिणक्रम से 'ॐ पृथिव्यै नमः' इत्यादि चार मन्त्रों से पूजा करे। फिर कोणों के दलाग्रों में 'ॐ निवृत्त्यै नमः' इत्यादि शेष मन्त्रों से पूजा करे। फिर पूर्वादि दिशाओं में प्रदक्षिणक्रम से प्रत्येक दिशा की ग्यारह-ग्यारह शक्तियों की पूजा पूर्व में 'ॐ जागृतायै नमः' इत्यादि ग्यारह मन्त्रों से एक साथ एक स्थान पर पूजा करे। फिर दक्षिण में 'ॐ मरुद्वेगायै नमः' इत्यादि ग्यारह मन्त्रों से पूजा करे। फिर पश्चिम में 'ॐ मदनप्रियायै नमः' इत्यादि ग्यारह मन्त्रों से पूजा करके उत्तर में 'ॐ श्वासोद्वाहायै नमः' इत्यादि ग्यारह मन्त्रों से पूजा करे। फिर भूपुर में पूर्वादिक्रम से इन्द्रादि दश दिक्पालों को उनके नाममन्त्रों से इस प्रकार पूजे—'ॐ इन्द्राय नमः, ॐ अग्नये नमः, ॐ यमाय नमः, ॐ निर्ऋतये नमः, ॐ वरुणाय नमः, ॐ वायवे नमः, ॐ सोमाय नमः, ॐ ईशानाय नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः तथा ॐ अनन्ताय नमः' यह दश दिक्पालों का पूजन होता है। पुनः उनके समीप उनके आयुधों का इस प्रकार पूजन करना चाहिये—'ॐ वज्राय नमः, ॐ शक्तये नमः, ॐ दण्डाय नमः, ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ ध्वजाय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ त्रिशूलाय नमः, ॐ पद्माय नमः तथा ॐ चक्राय नमः'। इस प्रकार आवरण-पूजा करके धूपादि नमस्कारान्त पूजा सम्पन्न कर यथाविधि जप प्रारम्भ करे।

अस्य पुरश्चरणं चतुश्चत्वारिंशत्सहस्र ४४००० जपः। तथा च शारदायाम्—

मन्त्रवर्णसहस्राणि जपेन्मन्त्रं विशालधीः। तदन्ते तिलसिद्धार्थचित्रमूलैः समिद्वरैः॥
क्षीरद्रुमाणामाज्येन हविषान्नैर्घृतान्वितैः। चतुश्चत्वारिंशदाढ्यं चतुःशतसमन्वितम्॥
चतुःसहस्रं जुहुयादर्चिते हव्यवाहने। इत्थं जपादिभिः सिद्धे मन्त्रेऽस्मिन्साधकोत्तमः॥

इति शारदातिलकोक्तं जातवेदोमन्त्रपुरश्चरणं समाप्तम्।

पुरश्चरण—इसका पुरश्चरण चौवालीस सहस्र मन्त्रों से होता है; जैसा कि शारदातिलक नामक तन्त्रग्रन्थ में वर्णित है—जितने मन्त्र के अक्षर हैं, उतने सहस्र जप को विशाल बुद्धि साधक को जपना चाहिये। उसके अन्त में काले तिल, सफेद सरसों, चित्रक की जड़, क्षीरीवृक्षों (वट, पीपल, पाकर, गूलर, जामुन, आम आदि) की समिधाओं से होम करना चाहिये। होम की संख्या चौवालीस सौ होनी चाहिये। घृत तथा हविष्यान्न का प्रयोग भी हवन में करना चाहिये। (इसके साथ तर्पण, मार्जन तथा ब्राह्मणभोजन भी दशांश के अनुपात में कराना आवश्यक है)। ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

ज्वरहरणाऽपामार्जनस्तोत्रम्

महादेव उवाच—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि अपामार्जनमुत्तमम्। पुलस्त्येन यथोक्तं तु दालभ्याय महात्मने॥ १॥
सर्वेषां रोगदोषाणां नाशनं मङ्गलप्रदम्। तत्तेऽहं तु प्रवक्ष्यामि शृणु त्वं नगनन्दिनि॥ २॥

ज्वर अपामार्जनस्तोत्र—श्रीमहादेव जी बोले—अब मैं उत्तम अपामार्जन कहता हूँ, जिसे पुलस्त्य ऋषि ने महात्मा दाल्भ्य को बताया था। यह सभी रोगदोषों को दूर कर मङ्गल करने वाला है। हे पार्वति! उसे तुम सुनो॥ १-२॥

श्रीदाल्भ्य उवाच—

भगवान्प्राणिनः सर्वे विषरोगाद्युपद्रवैः। कुष्ठग्रहाभिभूताश्च सर्वकाले ह्युपद्रुताः॥ ३॥
अभिचारिककृत्याद्या बहुरोगाश्च दारुणाः। न भवन्ति मुनिश्रेष्ठ तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि॥ ४॥

श्री दाल्भ्य बोले—हे भगवन्! सभी प्राणी सर्वकाल में विष, रोग, कुष्ठ तथा ग्रह (भूत-प्रेतादि) के उपद्रवों से पीड़ित रहते हैं। कृत्या आदि अभिचार कृत्यों, बहुत से दारुण रोगों से पीड़ित होते हैं; उन्हें ये पीड़ाएँ न हों, ऐसा उपाय आप बताइये॥ ३-४॥

पुलस्त्य उवाच—

व्रतोपवासनियमैर्विष्णुर्वै तोषितस्तु यैः। ते नरा नैव रोगार्ता जायन्ते मुनिसत्तम॥ ५॥
यैर्न कृतं व्रतं पुण्यं न दानं न तपस्तदा। न तीर्थं देवपूजां च नान्नं दत्तं तु भूरिशः॥ ६॥
ते वै लोकास्तदा ज्ञेया रोगदोषैः प्रपीडिताः। आरोग्यं परमामृद्धिं मनसा यद्यदिच्छति॥ ७॥
तत्तदाप्नोत्यसन्दिग्धं विष्णोः सेवी विशेषतः। नाधिं प्राप्नोति न व्याधिं न विषग्रहबन्धनम्॥ ८॥
कृत्यास्पर्शभयं नापि तोषिते मधुसूदने। समस्तदोषनाशश्च सर्वदा च शुभा ग्रहाः॥ ९॥
देवानामप्यधृष्योऽसौ तोषिते च जनार्दने। यः सर्वेषु च भूतेषु यथात्मनि तथा परे॥ १०॥
उपवासादिना तेन तोषितो मधुसूदनः। तोषिते तत्र जायन्ते नराः पूर्णमनोरथाः॥ ११॥
अरोगाः सुखिनो भोगभोक्तारो मुनिसत्तम। तेषां च शत्रवो नैव न च रोगाभिचारिकम्॥ १२॥
ग्रहरोगादिकं चैव पापकार्यं न जायते। अव्याहतानि कृष्णस्य चक्रादीन्यायुधानि वै॥ १३॥
रक्षन्ति सकलापद्भ्यो येन विष्णुरुपासितः।

पुलस्त्य जी बोले—जो लोग व्रत-उपवास-नियम आदि से विष्णु को तुष्ट करते हैं, हे मुनिसत्तम! वे लोग रोगों से पीड़ित नहीं होते हैं। जिसके द्वारा व्रत-दान-पुण्य-तप-तीर्थाटन-पूजा तथा अन्नदान आदि में से कुछ नहीं किया गया होता है, वे ही लोग रोग-दोषों से पीड़ित होते हैं; परन्तु जो लोग भगवान् की आराधना तथा व्रतादि करते हैं, उन्हें व्याधि, विष, ग्रह, बन्धन आदि का कष्ट नहीं होता है। उनको आरोग्य, समृद्धि आदि जिस-जिस पदार्थ की कामना मन से होती है, वे-वे सब उन्हें प्राप्त होते हैं। विष्णुसेवी को आधि-व्याधि, कृत्या आदि का कोई भय नहीं होता है। उन मधुसूदन को तुष्ट करने वालों के समस्त दोषों का नाश हो जाता है तथा ग्रह सदैव शुभ रहते हैं। जनार्दन के तुष्ट होने पर वह देवताओं से भी पराभूत नहीं होता है। जो उपवासादि से मधुसूदन को तुष्ट करता है, उससे उसके मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। वे लोग निरोगी, सुखी, भोग भोगने वाले हो जाते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! उनको न तो शत्रुभय होता है, न ही अभिचार कर्म का भय होता है। वह न पाप कर्म करते हैं और न उन्हें ग्रह तथा रोगों से पीड़ा होती है। उनकी रक्षा कृष्ण के चक्र आदि आयुध अव्याहत रूप से करते रहते हैं। जिसके द्वारा विष्णु की उपासना होती है, उसकी सम्पूर्ण आपदाओं से रक्षा होती है॥ ५-१३॥

श्रीदाल्भ्य उवाच—

अनाराधितगोविन्दा ये नरा दुःखभागिनः। तेषां दुखाभिभूतानां यत्कर्तव्यं दयालुभिः॥ १४॥
पश्यद्भिः सर्वभूतस्थं वासुदेवं सनातनम्। समदृष्टिभिरप्यत्र तन्मे ब्रूहि विशेषतः॥ १५॥

दाल्भ्य बोले—जो लोग गोविन्द की आराधना नहीं करते हैं, वे दुःख के भागी होते हैं। उनके दुःखपीड़ित होने पर दयालु महापुरुषों ने सभी प्राणियों के लिये वासुदेव सनातन को देखते हुए समदृष्टि होकर जो उपाय बताये हैं, उनको मुझसे कहो॥ १४-१५॥

श्रीपुलस्त्य उवाच—

तद्वक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठ समाहितमनाः शृणु। रोगदोषाशुभहरं विज्वरादिविनाशनम्॥ १६॥
शिखायां श्रीधरं न्यस्य शिखाधः श्रीकरं तथा। हृषीकेशं तु केशेषु मूर्ध्नि नारायणं परम्॥ १७॥
ऊर्ध्वश्रोत्रे न्यसेद्विष्णुं ललाटे जलशायिनम्। विभुं वै भ्रूयुगे न्यस्य भ्रूमध्ये हरिमेव च॥ १८॥
नरसिंहं नासिकाग्रे कर्णयोरर्णवेशयम्। चक्षुषोः पुण्डरीकाक्षं तदधो भूधरं न्यसेत्॥ १९॥
कपोलयोः कल्किनाथं वामनं कर्णमूलयोः। शङ्खिनं शङ्खयोर्न्यस्य गोविन्दं वदने तथा॥ २०॥
मुकुन्दं दन्तपंक्तौ तु जिह्वायां वाक्पतिं तथा। रामं हनौ तु विन्यस्य कण्ठे वैकुण्ठमेव च॥ २१॥
बलघ्नं बाहुमूलाधश्चांसयोः कंसघातिनम्। अजं भुजद्वये न्यस्य शार्ङ्गपाणिं करद्वये॥ २२॥
सङ्कर्षणं कराङ्गुष्ठे गोपमङ्गुलिपङ्क्तिषु। वक्षस्यधोक्षजं न्यस्य श्रीवत्सं तस्य मध्यतः॥ २३॥
स्तनयोस्त्वनिरुद्धं च दामोदरमथोदरे। पद्मनाभं तथा नाभौ नाभ्यधश्चापि केशवम्॥ २४॥
मेढ्रे धराधरं देवं गुदे चैव गदाग्रजम्। पीताम्बरधरं कट्यामूरुयुग्मे मधोर्द्विषम्॥ २५॥
मुरद्विषं पिण्डिकयोर्जानुयुग्मे जनार्दनम्। फणीशं गुल्फयोर्न्यस्य पादयोश्च त्रिविक्रमम्॥ २६॥
पादाङ्गुष्ठे श्रीपतिं च पादाधो धरणीधरम्। रोमकूपेषु सर्वेषु विष्वक्सेनं न्यसेद्बुधः॥ २७॥
मत्स्यं मांसे तु विन्यस्य कूर्मं मेदसि विन्यसेत्। वाराहं तु वसामध्ये सर्वास्थिषु तथाच्युतम्॥ २८॥
द्विजप्रियं तु मज्जायां शुक्रे श्वेतपतिं तथा। सर्वाङ्गे यज्ञपुरुषं परमात्मानमात्मनि॥ २९॥

पुलस्त्य बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! समाहित मन से सुनो। जो रोग-दोष का उपशमन, ज्वर आदि का विनाशन है, उसे सुनो। शिखा में श्रीधर का न्यास कर शिखा के नीचे श्रीकर का न्यास करे। केशों में हृषीकेश का तथा शिर में नारायण का, कानों से ऊपर विष्णु का, ललाट में जलशायी का, भौंहों में विभु का, भ्रूमध्य में हरि का न्यास करना चाहिये। नरसिंह को नासिका के अग्रभाग में, कर्णों में अर्णवशायी (बालमुकुन्द) का, नेत्रों में पुण्डरीकाक्ष का और उनके नीचे भूधर का न्यास करे। कपोलों में कल्किनाथ, कर्णमूलों में वामन, शङ्खप्रदेशों में शङ्खी तथा मुख में गोविन्द का न्यास करे। दन्तपङ्क्ति में मुकुन्द, जिह्वा में वाक्पति, हनु में राम का न्यास करे तथा कण्ठ में वैकुण्ठ का, बाहुमूल के नीचे बलघ्न का, कन्धों में कंसघाती का, दोनों भुजाओं में अज का न्यास करे। दोनों हाथों में शार्ङ्गपाणि का, कराङ्गुष्ठ में सङ्कर्षण का, अंगुलियों की पङ्क्ति में गोप का, वक्ष में अधोक्षज का तथा उसके मध्य में श्रीवत्स का न्यास करना चाहिये। दोनों स्तनों में अनिरुद्ध का, उदर में दामोदर का, नाभि में पद्मनाभ का, नाभि के नीचे केशव का, मेढ्र में धराधर का, गुदा में गदाग्रज का, कटि में पीताम्बरधर का, दोनों ऊरुओं में मधुद्वेषी का, दोनों पिण्डलियों में मुरद्वेषी का, दोनों घुटनों में जनार्दन का, दोनों गुल्फों में फणीश का तथा दोनों पैरों में त्रिविक्रम का न्यास करना चाहिये। पैरों के अङ्गूठों में पैरों के नीचे धरणीधर का, सभी रोमकूपों में बुद्धिमान् विष्वक्सेन का

न्यास करना चाहिये। मत्स्य को मांस में विन्यस्त कर कूर्म को मेद धातु में न्यास करना चाहिये। वसा में वराह का तथा सभी अस्थियों में अच्युत का न्यास करना चाहिये। द्विजप्रिय का मज्जा में, शुक्र में श्वेतपति का तथा अपने शरीर के सर्वाङ्ग में परमात्मा यज्ञपुरुष का न्यास करना चाहिये॥ १६-२९॥

एवं न्यासविधिं कृत्वा साक्षान्नारायणो भवेत्। यावन्न व्याहरेत्किञ्चित्तावद्विष्णुमयः स्थितः॥ ३०॥
गृहीत्वा तु समूलाग्रान्कुशाञ्शुद्धान्समाहितः। मार्जयेत्सर्वगात्राणि कुशाग्रैरिह शान्तिकृत्॥ ३१॥
विष्णुभक्तो विशेषेण रोगग्रहविषार्दिते। विषार्तानां रोगिणां च कुर्याच्छान्तिमिमां शुभाम्॥ ३२॥
जायते तेन भो विप्र सर्वरोगप्रणाशनम्। नमः श्रीपरमार्थाय पुरुषाय महात्मने॥ ३३॥
अरूपबहुरूपाय व्यापिने परमात्मने। वाराहं नारसिंहं च वामनं च सुखप्रदम्॥ ३४॥
ध्यात्वा कृत्वा नमो विष्णोर्नामान्यङ्गेषु विन्यसेत्। निष्कल्मषाय शुद्धाय व्याधिपापहराय वै॥ ३५॥
गोविन्दपद्मनाभाय वासुदेवाय भूभृते। नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिध्यतु मे वचः॥ ३६॥
त्रिविक्रमाय रामाय वैकुण्ठाय नराय च। श्रीवाराहनृसिंहाय वामनाय महात्मने॥ ३७॥
हयग्रीवाय शुभ्राय हृषीकेशं हराशुभम्। परोपतापमहितं प्रयुक्तं चाभिचारिकम्॥ ३८॥
गरस्पर्शमहारोगप्रयोगं जरया जर। नमोऽस्तु वासुदेवाय नमः कृष्णाय खड्गिने॥ ३९॥
नमः पुष्करनेत्राय केशवायादिचक्रिणे। नमः किञ्जल्कवर्णाग्र्यपीतनिर्मलवाससे॥ ४०॥
महादेववपुष्कन्धधृतचक्राय चक्रिणे। दंष्ट्रोद्धृतक्षितितलत्रिमूर्तिपतये नमः॥ ४१॥
महायज्ञवराहाय श्रीवल्लभ नमोऽस्तु ते। तप्तहाटककेशान्तज्वलत्पावकलोचन॥ ४२॥
वज्राधिकनखस्पर्शदिव्यसिंह नमोऽस्तु ते। कश्यपायातिहृस्वाय ऋग्यजुःसामलक्षण॥ ४३॥
तुभ्यं वामनरूपाय क्रमते गां नमोनमः। वाराहाशेषदुःखानि सर्वपापफलानि च॥ ४४॥
मर्द्दमर्द्द महादंष्ट्र मर्दमर्द च तत्फलम्। नृसिंह कुलिशस्पर्शदन्तप्रान्तनखोज्ज्वल॥ ४५॥
भञ्जभञ्ज निनादेन दुःखान्यस्यार्त्तिनाशन। ऋग्यजुःसामभिर्वाग्भिः कामरूपधराद्रिधृक्॥ ४६॥

इस प्रकार से न्यास करके साधक साक्षात् नारायण हो जाता है। जब तक वह आसन से उठता नहीं है, तब तक उसे विष्णुमय होकर ही स्थित रहना चाहिये। शुद्ध चित्त से समूलाग्र कुशाओं को हाथ में लेकर अपने सम्पूर्ण शरीर का मार्जन कुशाग्र से करके शान्तिलाभ प्राप्त करना चाहिये। विशेष रूप से जो विष्णुभक्त है, उसे रोग-ग्रह-विष आदि से पीड़ित होने पर उनके लिये इस शुभ-शान्ति कर्म को करना चाहिये, जिससे हे विप्र! सर्वरोगों का प्रशमन हो जाय। श्री परमार्थपुरुष महात्मा को नमस्कार है। अरुण होकर भी बहुरूप तथा व्यापी परमात्मा का, वाराह का, नृसिंह का तथा सुखप्रद वामन का ध्यान करके नमस्कार करके उनके नामों का अपने शरीराङ्गों में विन्यास करना चाहिये, जो कि निष्पाप, शुद्ध, व्याधिहर तथा पापहर हैं। गोविन्द, पद्मनाभ, भूभृत् वासुदेव को नमस्कार करके मैं कह रहा हूँ, जिससे मेरी वाणी सिद्ध हो। त्रिविक्रम को, राम को, नर को, वाराह को, नृसिंह को, महात्मा वामन को, हयग्रीव को, शुभ्र को, हृषीकेश को, जो कि अशुभ को हरने वाले, परोपताप, अहितकर अभिचार आदि से मुक्त करने वाले हैं; गर विष का स्पर्श, महारोग का प्रयोग—इनसे तथा जरा से अजर करने वाले वासुदेव कृष्ण खड्गधारी को नमस्कार है। पुष्करनेत्र को नमस्कार है, चक्रधारी केशव को नमस्कार है। किञ्जल्क वर्ण वाले को नमस्कार है, पीतवर्ण निर्मल वस्त्रधारी को नमस्कार है। महादेव शरीर वाले, स्कन्ध पर चक्र धारण करने वाले, दंष्ट्राओं से पृथ्वी का उद्धार करने वाले त्रिमूर्तिपति को नमस्कार है। हे महायज्ञ वराह, श्री वल्लभ! तुम्हें नमस्कार है, हे तप्त स्वर्ण के समान केशान्त वाले, ज्वलिताग्नि के समान नेत्रों वाले, वज्र से भी अधिक कराल नखों

के स्पर्श वाले दिव्य सिंह! आपको नमस्कार है। कश्यप, अतिह्रस्व ऋग्यजुःसाम के लक्षणों वाले वामनरूप होकर भी पृथ्वी को मापने वाले को नमस्कार है, नमस्कार है। हे वराह! आप मेरे अशेष दुःखों का तथा सभी पापफलों का मर्दन करो, मर्दन करो। हे महादंष्ट्र! उन पापों के फलों को मर्दित कर दो, मर्दित कर दो। हे नृसिंह! वज्र के समान स्पर्श वाले, दाँत, नख, दन्तधार तथा उज्ज्वल नखों वाले! अपनी गर्जना से दुःखों एवं पीड़ाओं भञ्जित कर दो, भञ्जित कर दो। आप ऋग्यजुःसाम की वाणी के द्वारा इच्छानुसार रूपधारी तथा गोवर्धनधारी हैं॥ ३०-४६॥

प्रशमं सर्वदुःखानि नय त्वस्य जनार्दन। ऐकाहिकं द्व्याहिकं च तथा त्रिदिवसज्वरम्॥ ४७॥
चातुर्थिकं तथात्युग्रं तथा वै सततज्वरम्। दोषोत्थं सन्निपातोत्थ तथैवागन्तुकज्वरम्॥ ४८॥
शमं नयतु गोविन्दो भित्त्वा छित्त्वास्य वेदिनाम्। नेत्रदुःखं शिरोदुःखं दुःखं तूदरसम्भवम्॥ ४९॥
अनुच्छ्वासं महाश्वासं परितापं सवेपथुम्। गुदघ्राणांघ्रिरोगांश्च कुष्ठरोगं तथा क्षयम्॥ ५०॥
कमलादींस्तथा रोगान् प्रमेहादींश्च दारुणान्। ये वातप्रभवा रोगा लूताविस्फोटकादयः॥ ५१॥
ते सर्वे विलयं यान्तु वासुदेवापमार्जिताः। विलयं यान्ति ते सर्वे विष्णोरुच्चारणेन वा॥ ५२॥
क्षयं गच्छन्तु चाशेषास्ते चक्राभिहता हरेः। अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्॥ ५३॥
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्। स्थावरं जङ्गमं यच्च कृत्रिमं चापि यद्विषम्॥ ५४॥
दन्तोद्भवं नखोद्भूतमाकाशाप्रभवं च यत्। भूतादिप्रभवं यच्च विषमत्यन्तदुःसहम्॥ ५५॥
शमं नयतु तत्सर्वं कीर्तितोऽस्य जनार्दनः।

हे जनार्दन! समस्त दुःखों का हरण का उनका शमन कर दो। एकाहिक ज्वर, द्व्याहिक ज्वर, त्र्याहिक ज्वर, अत्युग्र चातुर्थिक ज्वर, सन्तत ज्वर, एकदोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज तथा आगन्तुक ज्वर को हे गोविन्द! शान्त कर दो तथा इसकी वेदना का छेदन-भेदन कर दो। नेत्रदुःख, शिरोदुःख, उदरशूल, अनुच्छ्वास, महाश्वास, परिताप (जलन), वेपथु (कँपकँपी), गुदरोग, नासारोग, पैरों के रोग, कुष्ठरोग, क्षयरोग, कामला आदि रोगों; दारुण प्रमेहों, वातरोगों, लूता (मकड़ी), स्फोट (फोटे) आदि सभी रोग वासुदेव के द्वारा अपमार्जित होकर विलीन हो जायँ। वे सब विष्णु के उच्चारण से विलीन हो जायँ। शेष जितने भी रोग हैं, वे श्रीहरि के चक्र से नष्ट हो जायँ। अच्युत, अनन्त तथा गोविन्द के नामोच्चारणरूपी भेषज से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सत्य कहता हूँ। स्थावर विष, जङ्गम विष तथा कृत्रिम विष, दाँतों का विष, नाखूनों का विष, आकाश से वर्षा हुआ विष, भूतादि द्वारा प्रेषित विष, जो भी अत्यन्त विषम तथा दुःस्सह विष हैं, वह सब जनार्दन के नाम-गुणकीर्तन से शान्त हो जायँ॥ ४७-५५॥

ग्रहान् प्रेतग्रहांश्चैव तथान्याच्छाकिनीग्रहान्॥ ५६॥
मुखमण्डलिकान् क्रूरान् रेवतीं वृद्धिरेवतीम्। वृद्धिकाख्यान्ग्रहांश्चोग्रांस्तथा मातृग्रहानपि॥ ५७॥
बालस्य विष्णोश्चरितं हेतुं बालग्रहानपि। वृद्धानां ये ग्रहा केचिद्बालानां चापि ये ग्रहाः॥ ५८॥
नृसिंहदर्शनादेव नश्यन्ते तत्क्षणादपि। दंष्ट्राकरालवदनो नृसिंहो दैत्यभीषणः॥ ५९॥
तं दृष्ट्वा ते ग्रहाः सर्वे दूरं यान्ति विशेषतः। श्रीनृसिंह महासिंह ज्वालामालोज्वलानन॥ ६०॥
ग्रहानशेषान्सर्वेश नुद स्वास्यविलोचन। ये रोगा ये महोत्पाता ये द्विषो ये महाग्रहाः॥ ६१॥
यानि च क्रूरभूतानि ग्रहपीडाश्च दारुणाः। शस्त्रक्षतेषु ये रोगा ज्वालगर्दभिकादयः॥ ६२॥
विस्फोटकादयो ये च ग्रहा गात्रेषु संस्थिताः। त्रैलोक्यरक्षाकर्त्तस्त्वं दुष्टदानववारण॥ ६३॥
सुदर्शनमहातेजश्छिन्धि छिन्धि महाज्वरम्। छिन्धि वातं च लूतां च छिन्धि घोरं महाविषम्॥ ६४॥
उद्दण्डामरशूलं च विषज्वालासगर्दभम्। ॐ ह्रांह्रांह्रूंह्रूं प्रधारेण कुठारेण हन द्विषः॥ ६५॥

ग्रह, प्रेतग्रह, अन्य शाकिनी आदि ग्रह, मुखमण्डलिका ग्रह, क्रूर रेवती आदि जो बालकों को पीड़ित करने वाले ग्रह हैं, वे सब नृसिंह के दर्शनमात्र से ही उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं। भीषण दैत्य भी दंष्ट्रा कराल मुख वाले नृसिंह को देखकर तथा वे ग्रह भी उनको देखकर दूर से ही पलायन कर जाते हैं। बूढ़ों के ग्रह, मातृगृह, वृद्धिकाख्य ग्रह—ये सभी भाग जाते हैं। श्री नृसिंह महासिंह ज्वालाओं की माला से उज्ज्वल आनन वाले हे सर्वेश! अपनी दृष्टि से इन सभी ग्रहों को भस्म कीजिये। जो रोग हैं, महान् उत्पात हैं; जो शत्रु हैं, जो महाग्रह हैं, जो क्रूर भूत-प्रेतों की दारुण पीड़ा हैं, शस्त्र के घाव से जो रोग उत्पन्न होते हैं, ज्वालगर्दभिका आदि रोग, विस्फोट आदि, जो ग्रह शरीर में स्थित हैं, आप तीनों लोकों के रक्षक तथा दुष्ट दानवों का निवारण करने वाले हैं। हे सुदर्शन महातेजस्वी! आप महाज्वर को काट दो, काट दो, वातरोग को काट दो, लूता (मकड़ी के विष) को काट दो, घोर महाविष को काट दो, उद्दण्डामरशूल, विषज्वाला, ज्वालागर्दभ, ॐ ह्रां ह्रां ह्रूं ह्रूं तेज धार के कुठार से वैरियों को मार दो॥ ५६-६५॥

ॐ नमो भगवते सुदर्शनाय दुःखदारणविग्रह। यानि चान्यानि दुष्टानि प्राणिपीडाकराणि वै॥ ६६॥
तानि सर्वाणि सर्वात्मा परमात्मा जनार्द्दनः। किञ्चिद्रूपं समास्थाय वासुदेव नमोऽस्तु ते॥ ६७॥
क्षिप्त्वा सुदर्शनं चक्रं ज्वालामालाविभीषणम्। सर्वदुष्टोपशमनं कुरु देववराच्युत॥ ६८॥
सुदर्शन महाचक्र गोविन्दस्य वरायुध। तीक्ष्णधार महावेग सूर्यकोटिसमद्युते॥ ६९॥
सुदर्शन महाज्वाल छिन्धि छिन्धि महारव। सर्वदुःखानि रक्षांसि पापानि च विभीषण॥ ७०॥
दुरितं हन चारोग्यं कुरु त्वं भो सुदर्शन। प्राच्यां चैव प्रतीच्यां च दक्षिणोत्तरतस्तथा॥ ७१॥
रक्षां करोतु विश्वात्मा नरसिंहः स्वगर्जितैः। भूम्यन्तरिक्षे च तथा पृष्ठतः पार्श्वतोग्रतः।
रक्षां करोतु भगवान् बहुरूपी जनार्दनः॥ ७२॥
यथा विष्णुमयं सर्वं सदेवासुरमानुषम्। तेन सत्येन सकलं दुःखमस्य प्रणश्यतु॥ ७३॥
यथा योगेश्वरो विष्णुः सर्ववेदेषु गीयते। तेन सत्येन सकलं दुःखमस्य प्रणश्यतु॥ ७४॥
परमात्मा यथा विष्णुर्वेदाङ्गेषु च गीयते। तेन सत्येन विश्वात्मा सुखदोऽस्त्वस्य केशवः॥ ७५॥
शान्तिरस्तु शिवं चास्तु प्रणाशं यातु चासुखम्। वासुदेवशरीरोत्थैः कुशैः सम्मार्जितं मया॥ ७६॥
अपामार्जित गोविन्द नमो नारायणस्तथा। तथापि सर्वदुःखानां प्रशमो वचनाद्धरेः॥ ७७॥
शान्ताः समस्तदोषास्ते ग्रहाः सर्वे विषाणि च। भूतानि च प्रशाम्यन्ति संस्मृते मधुसूदने॥ ७८॥
एते कुशा विष्णुशरीरसम्भवा जनार्दनोऽहं स्वयमेव जाग्रतः।
हतं मया दुःखमशेषमस्य वै स्वस्थो भवत्वेष वचो यथा हरेः॥ ७९॥
शान्तिरस्तु शिवं चास्तु दुःखं च यत् प्रणश्यतु। यदस्य दुरितं किञ्चित्क्षिप्तं तल्लवणाम्भसि॥ ८०॥
स्वास्थ्यमस्य सदैवास्तु हृषीकेशस्य कीर्त्तनात्। यद्योतोत्रागतं पापं तत्तु तत्र प्रगच्छतु॥ ८१॥

हे भगवन् सुदर्शन! जो दुःख के दारण करने वाले हैं, जो अन्य पीड़ाकारक दुष्ट प्राणी हैं, उन सबको हे परमात्मा जनार्दन! आप किसी भी रूप में स्थित होकर नष्ट कर दो। हे वासुदेव! आपको नमस्कार है। ज्वालामाल-विभूषण सुदर्शन चक्र को फेंककर हे देवश्रेष्ठ अच्युत! सभी दुष्टों का प्रशमन कर दो। हे महाचक्र, गोविन्द के श्रेष्ठ आयुध, तीक्ष्ण धार, महावेग तथा करोड़ों सूर्य के समान आभा वाले सुदर्शन, महाज्वाला तथा महारव करने वाले!

सभी भयदायक महापापों, राक्षसों को काट दो-काट दो। दुरितों को समाप्त करो तथा आरोग्य को प्राप्त कराओ। हे सुदर्शन! आप पूर्व से, पश्चिम से, दक्षिण से तथा उत्तर से पापों को नष्ट करो। हे विश्वात्मा नृसिंह! आप अपनी गर्जना से रक्षा करो। भूमि में, अन्तरिक्ष में, पीछे से, आगे से, बहुरूपी जनार्दन भगवान् रक्षा करो। जिस प्रकार से देव, असुर, मानव सबमें विष्णु का निवास है, इसी सत्य से इस रोगी के भी दुःख नष्ट हों। जिस प्रकार योगेश्वर विष्णु की महिमा का गान सभी देवों द्वारा किया जाता है, उस सत्य के द्वारा हे विश्वात्मा केशव! आप इस (पीड़ित) के लिये सुखदायी हों। शान्ति हो, कल्याण हो तथा असुख का नाश हो। मेरे द्वारा वासुदेव के शरीर से उत्पन्न कुशों के द्वारा मार्जन करने से हे अपमार्जित गोविन्द नमोनारायण मेरे वचन से हे हरि सर्वदुःखों का प्रशमन हो जाय। जितने भी दोष हैं, पीड़ाकारक ग्रह हैं, जितने भी विष हैं, हानिकर प्राणी हैं; वे सभी मधुसूदन के स्मरण से शान्त हो जाते हैं। ये कुश विष्णु के शरीर से उत्पन्न हैं तथा मैं स्वयमेव जनार्दन आगे स्थित हूँ। अतः इस रोगी के सभी दुःख शान्त हो जायँ, यह वाणी भगवान् के सत्य होने की भाँति ही सत्य हो। शान्ति हो, कल्याण हो, जो भी दुःख हो, वह नष्ट हो। इस रोगी के जो कुछ भी दुःख हों, वे सब समुद्र में गिर जायँ भगवान् के कीर्तन से सदैव इसका स्वास्थ्य बना रहे और जहाँ-जहाँ से पाप आया हो, वहाँ-वहाँ चला जाय॥ ६६-८१ ॥

एतद्रोगेषु पीडासु जन्तूनां हितमिच्छुभिः। विष्णुभक्तैश्च कर्तव्यमपामार्जनकं परम्॥ ८२॥
अनेके सर्वदुःखानि विलयं यान्त्यशेषतः। सर्वपापविशुद्ध्यर्थं विष्णोश्चैवापमार्जनम्॥ ८३॥
आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं ब्रह्महत्यादिकं तु यत्। तत्सर्वं नश्यते तूर्णं तमोवद्रविदर्शनात्॥ ८४॥
नश्यन्ति रोगदोषाश्च सिंहात्क्षुद्रमृगा यथा। ग्रहभूतपिशाचादिः श्रवणादेव नश्यतु॥ ८५॥
द्रव्यार्थं लोभपरमैर्न कर्तव्यं कदाचन। कृतेऽपामार्जने किञ्चिन्न ग्राह्यं हितकाम्यया॥ ८६॥
निरपेक्षैः प्रकर्तव्यमादिमध्यान्तबोधकैः। विष्णुभक्तैः सदाशान्तैरन्यथा सिद्धिदं भवेत्॥ ८७॥
अतुलेयं नृणां सिद्धिरियं रक्षा परा नृणाम्। भेषजं परमं ह्येतद्विष्णोर्यदपमार्जनम्॥ ८८॥
उक्तं हि ब्रह्मणा पूर्वं पुलस्त्याय सुताय वै। एतत्पुलस्त्यो हि मुनिर्दालभ्यायोक्तवान्स्वयम्॥ ८९॥
सर्वभूतहितार्थाय दालभ्येन प्रकाशितम्। त्रैलोक्ये तदिदं विष्णोः समाप्तं चापमार्जनम्॥ ९०॥
तवाग्रे कथितं देवि यतो भक्तासि मे सदा। श्रुत्वा तु सर्वं भक्त्या च रोगान्दोषान्व्यपोहति॥ ९१॥

इस अपामार्जन प्रयोग को रोगपीड़ित व्यक्तियों के हित के लिये विष्णुभक्तों को प्रयोग करना चाहिये, इससे सभी दुःख समूल नष्ट हो जाते हैं। यह विष्णु का अपमार्जन सभी पापों की विशुद्धि के लिये है। आर्द्र या शुष्क, लघु या स्थूल जो भी ब्रह्महत्यादिक पाप हैं, वे सब शीघ्र ही इसके प्रयोग से उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्य से अन्धकार नष्ट होता है। जिस प्रकार से सिंह से क्षुद्र मृग भाग जाते हैं, उसी प्रकार इस अपमार्जन स्तोत्र के श्रवणमात्र से ग्रह-भूत-पिशाच आदि नष्ट हो जाते हैं। विष्णुभक्तों को इसका जप (पाठ) निष्काम भाव से भी करते रहना चाहिये। धन के लोभ के लिये इसका प्रयोग किसी रोगी पर नहीं करना चाहिये। यदि किसी का अपमार्जन करे तो बदले में कुछ भी नहीं लेना चाहिये। यदि विष्णुभक्त निष्काम भाव से इसका पाठ करते हैं तो उनको सदैव शान्ति रहती है। यह मनुष्यों का अमोघ रक्षक है, विष्णु का यह अपमार्जन परम भेषज है। इसे पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने अपने पुत्र पुलस्त्य को कहा था। पुलस्त्य ने इसे दालभ्य मुनि से कहा। यह सभी प्राणियों के हित के लिये दालभ्य ने प्रकट किया है, इससे तीनों लोकों का हित है। अब यह अपमार्जन समाप्त होता है। तुम मेरी भक्त हो, अतः मैंने तुम्हें इसे बता दिया है। जो इसे भक्तिपूर्वक सुनेगा, उसके सभी रोग तथा दोष नष्ट होंगे॥ ८२-९१ ॥

महादेव उवाच—

अपामार्जनकं दिव्यं परमाद्भुतमेव च। पठितव्यं विशेषेण पुत्रकामार्थसिद्धये॥ ९२॥
एतत्स्तोत्रं पठेत्प्राज्ञः सर्वकामार्थसिद्धये। एककालं द्विकालं वा ये पठन्ति द्विजातयः॥ ९३॥
आयुश्च श्रीर्बलं तस्य वर्द्धयन्ति दिने दिने। ब्राह्मणो लभते विद्यां क्षत्रियो राज्यमेव वा॥ ९४॥
वैश्यो धनसमृद्धिं च शूद्रो भक्तिं च विन्दति। अन्यैश्च लभ्यते भक्तिः पठनाच्छ्रवणाज्जपात्॥ ९५॥
सामवेदफलं तस्य जायते नगनन्दिनि। अखिलं पापसङ्घातं तत्क्षणादेव नश्यति॥ ९६॥
इति ज्ञात्वा तु भो देवि पठितव्यं समाहितैः। पुत्राश्चैव तथा लक्ष्मीः सम्पूर्णा भवति ध्रुवम्॥ ९७॥
लिखित्वा भूर्जपत्रे तु यो धारयति वैष्णवः। इहलोके सुखं भुक्त्वा याति विष्णोः परं पदम्॥ ९८॥
पठित्वा श्लोकमेकं तु तुलसीं यः समर्पयेत्। सर्वं तीर्थं कृतं तेन तुलस्या पूजने कृते॥ ९९॥
एतत्स्तोत्रं तु परमं वैष्णवं मुक्तिदायकम्। पृथ्वीदानसमं पाठाद्विष्णुलोकं तु गच्छति॥ १००॥
जपेत्स्तोत्रं विशेषेण विष्णुलोकस्य वाञ्छया। बालानां जीवनार्थाय पठितव्यं समाहितैः॥ १०१॥
रोगग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम्। भूतग्रहविषं चैव पठनादेव नश्यति॥ १०२॥
कण्ठे तुलसिजां मालां धृत्वा विप्रो हि यः पठेत्। स च वैष्णवो ज्ञेयो विष्णुलोकं स गच्छति॥ १०३॥
कण्ठे माला धृता येन शङ्खचक्रादिचिह्नितः। वैष्णवः प्रोच्यते विप्रः स्तोत्रं चैतत्पठन्सदा॥ १०४॥
इमं लोकं परित्यज्य विष्णुलोकं स गच्छति। मोहमायापरित्यक्तो दम्भतृष्णाविवर्जितः॥ १०५॥
एतत्स्तोत्रं पठेद्दिव्यं परं निर्वाणमाप्नुयात्। ते धन्याः सन्ति भूर्लोके ये विप्रा वैष्णवाः स्मृताः॥ १०६॥
स्वात्मा वै तारितस्तैस्तु सकुलो नात्र संशयः। ते वै धन्यतमा लोके नारायणपरायणाः॥
तैर्भक्तिश्च सदा कार्या ते वै भागवता नरा॥ १०७॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे उत्तरखण्डे शिवपार्वतीसंवादे अपामार्जनस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

श्री महादेव जी बोले—यह परम अद्भुत अपमार्जन है, इसे पुत्र की कामना वालों को अपनी सिद्धि के लिये पढ़ना चाहिये। प्राज्ञ पुरुष को यह स्तोत्र समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिये पढ़ना चाहिये। एक समय या दो समय इसे जो द्विजाति पढ़ते हैं, उनके आयु, लक्ष्मी, बल दिन-प्रतिदिन बढ़ते हैं। ब्राह्मण को विद्या प्राप्त होती है। क्षत्रिय को राज्य मिलता है। वैश्य को धन-समृद्धि प्राप्त होती है। शूद्र को भगवान् की भक्ति प्राप्त होती है। अन्यों को भी इसके पठन, श्रवण तथा जप से भक्ति मिलती है। पढ़ने वाले को हे पार्वति! सामवेद का फल मिलता है, उसके सभी पापसमूह तुरन्त ही नष्ट हो जाते हैं। ऐसा जानकर हे देवि! इसे एकाग्रचित्त से पढ़ना चाहिये। पाठक को पुत्र तथा लक्ष्मी सम्पूर्ण रूप में निश्चित ही प्राप्त होती है। जो वैष्णव इस स्तोत्र को भोजपत्र पर लिखकर धारण करता है, वह इस लोक में सुख भोगकर विष्णु के परमपद को प्राप्त होता है। जो इसके एक श्लोक को पढ़कर भगवान् विष्णु को तुलसीपत्र अर्पित करता है, उसे सभी तीर्थों की पूजा का फल मिल जाता है। यह परम स्तोत्र वैष्णव को मुक्ति देने वाला है। इसके पाठ का फल पृथ्वीदान के समान है, इसके पाठ से विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। विष्णुलोक की कामना से इस श्लोक का विशेष रूप से जप करना चाहिये। बच्चों के जीवन के लिये इसका पाठ एकाग्र मन से करना चाहिये। यह रोगग्रस्त तथा भूतादि से पीड़ित बालकों के लिये शान्तिदायक है। भूत-ग्रह तथा विष इसको पढ़ने मात्र से नष्ट होते हैं। जो ब्राह्मण कण्ठ में तुलसी की माला पहिन कर इसे पढ़ता है, वह वैष्णव होता है तथा विष्णुलोक को जाता है। जिसने अपने कण्ठ में शङ्ख-चक्र आदि चिह्नों से युक्त माला

पहिनी हो, वह विप्र वैष्णव है, वह इस स्तोत्र को सदैव पढ़े। वह इस लोक को त्याग कर विष्णुलोक को जाता है तथा मोह, माया, दम्भ, तृष्णा से रहित हो जाता है। इस दिव्य स्तोत्र को पढ़ने से परम निर्वाण प्राप्त होता है। वे ब्राह्मण धन्य हैं, जो इस पृथ्वी पर वैष्णव कहे जाते हैं। वे स्वयं को तथा अपने कुल को भी तार लेते हैं; इसमें संशय नहीं है। वे लोग धन्य हैं, जो नारायण-परायण हैं। जो भागवत व्यक्ति हैं, उनको विष्णु की भक्ति सदैव करनी चाहिये॥ ९२-१०८॥

सर्वरोगहरं श्रीमाहेश्वरकवचम्

राजोवाच—

अङ्गन्यासो यदुक्तो भो महेशाक्षरसंयुतः। विधानं कीदृशं तस्य कर्तव्यः केन हेतुना॥ १॥
तद्वदस्व महाभाग विस्तरेण ममाग्रतः।

माहेश्वर कवच—राजा ने पूछा—हे महाभाग! आपने माहेश्वर कवच का जो अङ्गन्यास महेशाक्षर से युक्त बताया है, उसका विधान क्या है और उसे किस हेतु करना चाहिये? उसे विस्तार से मुझे बतायें॥ १॥

भृगुरुवाच—

कवचं माहेश्वरं राजन्देवैरपि सुदुर्लभम्। यः करोति स्वगात्रेषु पूतात्मा स भवेन्नरः॥ २॥
कृत्वा न्यासमिमं यस्तु सङ्ग्रामं प्रविशेन्नरः। न शरास्तोमरास्तस्य खड्गशक्तिपरश्वधाः॥ ३॥
प्रभवन्ति रिपोः क्वापि भवेच्छिवपराक्रमः। व्याधिग्रस्तस्तु यः कश्चित्कारयेच्चैव मार्जनम्॥ ४॥
एकादशकुशैः साग्रैर्मुक्तो भवति नान्यथा। न भूता न पिशाचाश्च कूष्माण्डा न विनायकाः॥ ५॥
शिवस्मरणमात्रेण न विशन्ति कलेवरम्।

ॐ नमः पञ्चवक्त्राय शशिसोमार्कनेत्राय भयार्तानामभयाय मम सर्वगात्ररक्षार्थे विनियोगः।'ॐ हौं हां हं' मन्त्रेणानेन वृषगोमयभस्मनाम्। आमन्त्र्य ललाटे तिलकमादाय पठेत्।

श्री भृगु बोले—हे राजन्! यह माहेश्वर कवच देवों को भी दुर्लभ है। जो इसका न्यास अपने शरीराङ्गों में करता है, वह पवित्रात्मा हो जाता है। जो इस न्यास को करके संग्राम में प्रवेश करता है, उसके शरीर पर बाण, तलवार, तोमर, शक्ति तथा परशु प्रभाव नहीं करते हैं। वह शिव के समान पराक्रमी हो जाता है, उसके शत्रु उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाते हैं। जो व्याधिग्रस्त व्यक्ति शिवमार्जन ग्यारह कुशों से करता है, उसका भूत-प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड तथा विनायक-जन्य कष्ट दूर हो जाता है। शिव के प्रभाव से वे उसके शरीर में प्रवेश नहीं करते हैं।

'ॐ नमः पञ्चवक्त्राय, शशिसोमार्कनेत्राय, भयार्त्तानामभयाय मम सर्वगात्ररक्षार्थे विनियोगः' इस मन्त्र से कवच का विनियोग करना चाहिये। तिलक 'ॐ हौं हां हं' इस मन्त्र से बैल के गोबर के भस्म का तिलक (त्रिपुण्ड्र) ललाट पर लगाकर कवच का पाठ करना प्रारम्भ करना चाहिये।

त्राहि मां देव दुष्प्रेक्ष शत्रूणां भयवर्द्धन। ॐ स्वच्छन्दभैरवः प्राच्यामाग्नेय्यां शिखिलोचनः॥ १॥
भूतेशो दक्षिणे भागे नैर्ऋत्यां भीमदर्शनः। वारुण्यां वृषकेतुश्च वायौ रक्षतु शङ्करः॥ २॥
दिग्वासाः सौम्यतो नित्यमैशान्यां मदनान्तकः। वामदेवोर्ध्वतो रक्षेदधो रक्षेत्त्रिलोचनः॥ ३॥
पुरारिः पुरतः पातु कपर्दी पातु पृष्ठतः। विश्वेश्वो दक्षिणे भागे वामे कालीपतिः सदा॥ ४॥
महेश्वरः शिरोभागे भवो भाले सदैव तु। भ्रुवोर्मध्ये महातेजास्त्रिनेत्रो नेत्रयोर्द्वयोः॥ ५॥
पिनाकी नासिकादेशे कर्णयोर्गिरिजापतिः। उग्रः कपोलयो रक्षेन्मुखदेशे महाभुजः॥ ६॥

जिह्वायामन्धकध्वंसी दन्तान्रक्षतु मृत्युजित्। नीलकण्ठः सदा कण्ठे पृष्ठे कामाङ्गनाशनः॥ ७॥
त्रिपुरारिः स्कन्धदेशे बाह्वोश्च चन्द्रशेखरः। हस्तिचर्मधरो हस्ते नखाङ्गुलिषु शूलभृत्॥ ८॥
भवानीशः पातु हृदि पातूदरकटी मृडः। गुदे लिङ्गे च मेढ्रे च नाभौ च प्रमथाधिपः॥ ९॥
जङ्घोरुचरणे भीमः सर्वाङ्गे केशवप्रियः। रोमकूपे विरूपाक्षः शब्दस्पर्शे च योगवित्॥ १०॥
रक्तमज्जावसामांसशुक्रे वसुगणार्चितः। प्राणापानसमानेषूदानव्यानेषु धूर्जटिः॥ ११॥
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन यत्। तत्सर्वं रक्ष मे देव व्याधिदुर्गज्वरादितः॥ १२॥

हे शत्रुओं का भय बढ़ाने वाले, दुष्प्रेक्ष्य देव! मेरी रक्षा करो। स्वच्छन्दभैरव पूर्व में, अग्निकोण में शिखिलोचन, भूतेश दक्षिण भाग में, भीमदर्शन नैर्ऋत्य में, वृषकेतु पश्चिम में एवं वायव्य में मेरी रक्षा शङ्कर करें। दिग्वासा उत्तर से मेरी नित्य रक्षा करें तथा ईशान में मदनान्तक, वामदेव ऊर्ध्व में तथा त्रिलोचन अधोभाग में रक्षा करें। पुरारी सामने से रक्षा करें, कपर्दी पीछे से रक्षा करें। विश्वेश दाहिनी ओर से तथा कालीपति बाँईं ओर से सदैव मेरी रक्षा करें। महेश्वर शिरोभाग में, भव भाल में, भौंहों के मध्य में महातेजा एवं त्रिनेत्र दोनों नेत्रों की रक्षा करें। पिनाकी नाक की, गिरिजापति कर्ण की, उग्र कपोलों की तथा महाभुज मुख की रक्षा करें। अन्धकध्वंसी जीभ की एवं मृत्युजित् दाँतों की रक्षा करें। नीलकण्ठ सदैव कण्ठ की रक्षा करें तथा पीठ की कामाङ्गनाशन रक्षा करें। त्रिपुरारी स्कन्ध देश की, चन्द्रशेखर बाहुओं की, हस्तिचर्मधर हाथ की एवं शूलभृत् नख तथा अङ्गुलियों की रक्षा करें। भवानीश हृदय की रक्षा करें। मृड उदर तथा कटि की रक्षा करें। गुद-लिंग-मेढ्र-नाभि की रक्षा प्रमथाधिप करें। जङ्घा-ऊरु-चरण की भीम, सर्वाङ्ग की केशवप्रिय, रोमकूपों की विरूपाक्ष, शब्दस्पर्श की योगवित्, रक्त-मज्जा-वसा-मांस-शुक्र की वसुगणार्चित तथा प्राणापान-समान-उदान एवं व्यान की रक्षा धूर्जटि करें। जो रक्षाहीन स्थान है तथा जिसका कवच में उल्लेख नहीं है, उस सबकी एवं रोग, दुर्ग तथा ज्वरादि से देव रक्षा करें॥ १-१२॥

कार्य्यं कर्म्म त्विदं प्राज्ञैर्दीपं प्रज्वाल्य सर्पिषा। निवेद्य शिखिनेत्राय वारयेत्तु ह्युदङ्मुखम्॥ १३॥
ज्वरदाहपरिक्रान्तं तथान्यव्याधिसंयुतम्। कुशैः सम्मार्ज्य सम्मार्ज्य क्षिपेद्दीपशिखां ज्वरम्॥ १४॥
ऐकाहिकं द्व्याहिकं वा तृतीयकचतुर्थकम्। वातपित्तकफोद्भूतं सन्निपातोग्रतेजसम्॥ १५॥
अन्यं दुःखदुराधर्षकर्म्मजं चाभिचारिकम्। धातुस्थं कफसम्मिश्रं विषमं कामसम्भवम्॥ १६॥
भूताभिषङ्गसंसर्गं भूतचेष्टादिसंस्थितम्। शिवाज्ञां घोरमन्द्रेण पूर्ववृत्तं स्वयं स्मर॥ १७॥
त्यज देहं मनुष्यस्य दीपं गच्छ महाज्वरः। कृतं तु कवचं दिव्यं सर्वव्याधिभयार्द्दनम्॥ १८॥

बुद्धिमानों को यह कार्य करना चाहिये—घी का दीपक जलाकर उसे श्री शङ्कर जी को निवेदित करके उसको उत्तर की ओर मुख तथा ज्योति करके जलाये। जो व्यक्ति ज्वर, दाह से परिक्रान्त तथा अनेक रोगों से युक्त हो, उसके शरीर का मार्जन कुशाग्र भाग से करके उसे दीपशिखा में फेंकते हुये (छिड़कते हुये) इस प्रकार कहे— एकाहिक द्व्याहिक, तृतीयक, चातुर्थिक, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज उग्र तेज वाला ज्वर; अन्य कठिन दुर्धर्ष अभिचारजन्य तथा कर्मज दुःख, धातु में स्थित, कफसम्मिश्रित विषम, कामसम्भव रोग, भूताभिषङ्ग-जन्य रोग, संक्रामक रोग, भूत की चेष्टाओं वाला रोग जो भी हो, वह शिव की आज्ञा से अपने घोर चरित्र को स्वयं स्मरण कर इस मनुष्य के शरीर को छोड़कर हे महाज्वर! तू दीपक में चला जा। यह सर्वव्याधिविनाशकर्त्ता दिव्यकवच है॥ १३-१८॥

न बाधन्ते व्याधयस्तं बालग्रहभयानि च। लूताविस्फोटकं घोरं शिरोर्तिच्छर्दिविग्रहम्॥ १९॥
कामलां क्षयकासं च गुल्माश्मरीभगन्दराः। शूलोन्मादं च हृद्रोगयकृती पाण्डुविद्रधिम्॥ २०॥

अतिसारादिरोगांश्च डाकिनीपीडकग्रहान्। पामाविचर्चिकादद्रुकुष्ठव्याधिविषार्दनम् ॥ २१ ॥
स्मरणान्नाशयत्याशु कवचं शूलपाणिनः। यस्तु स्मरति नित्यं वै यस्तु धारयते नरः॥ २२ ॥
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो वसेच्छिवपुरे चिरम्। सङ्ख्याव्रतस्य दानस्य यज्ञस्यास्तीह शास्त्रतः॥ २३ ॥
न सङ्ख्या विद्यते शम्भोः कवचस्मरणाद्यतः। तस्मात्सम्यगिदं सर्वैः सर्वकामफलप्रदम्॥ २४ ॥
श्रोतव्यं सततं भक्त्या कवचं सर्वकामिकम्। लिखितं तिष्ठते यस्य गृहे सम्यगनुत्तमम्॥ २५ ॥
न तत्र कलहोद्वेगो नाकालमरणं भवेत्। नाल्पप्रजाः स्त्रियस्तत्र न दौर्भाग्यं समाश्रिताः॥ २६ ॥
तस्मान्माहेश्वरं नाम कवचं देवगणार्चितम्। श्रोतव्यं पठितव्यं च मन्तव्यं भावुकप्रदम्॥ २७॥
श्रीमाहेश्वरकवचं सर्वव्याधिनिषूदनम्। यः पठेत्तु नरो नित्यं स व्रजेच्छाङ्करं पुरम्॥ २८ ॥

इति सर्वव्याधिहरं श्रीमाहेश्वरकवचं सम्पूर्णम्।

इस कवच को धारण करने वाले के रोग, बालग्रह, भय, लूता, विस्फोट, घोर शिरोशूल, वमन, कामला, क्षय, कास, गुल्म, अश्मरी, भगन्दर, शूल, उन्माद, हृद्रोग, यकृत् रोग, पाण्डु, विद्रधि, अतिसार आदि रोग, डाकिनी आदि ग्रहों की पीड़ा, पामा, विचर्चिका, दद्रु, कुष्ठ, व्याधि तथा विष का नाश होता है। इस शिवजी के कवच के स्मरण से शीघ्र ही ये सब नष्ट हो जाते हैं। जो इस कवच का नित्य स्मरण करता है तथा उसे धारण करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर शिवपुर में चिरकाल तक वास करता है। व्रत-दान-यज्ञ की तो शास्त्रों में संख्या बताई गयी है, परन्तु शिवजी के कवच के स्मरण तथा पाठ की कोई संख्या निर्धारित नहीं है। यह कवच सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। जिसके घर में यह कवच लिखा हुआ अथवा छपा हुआ स्थित रहता है, उसके घर में कलह तथा उद्वेग नहीं होता है और न ही अल्प सन्तान, अल्प स्त्रियाँ तथा दुर्भाग्य आता है। यह माहेश्वर कवच देवगणों के द्वारा अर्चित है। इसे सुनना, पढ़ना तथा मनन करना चाहिये। यह श्री माहेश्वर कवच सभी व्याधियों को नष्ट कर देता है। जो व्यक्ति इस कवच का नित्य पाठ करता है, वह शिवपुर को जाता है॥ १९-२८ ॥

सद्य आरोग्यकरं सूर्य्यार्घ्यदानविधानम्

सुदिने कृतनित्यक्रियः आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ सङ्कीर्त्य 'मम अमुकस्य वा अमुकज्वरादिव्याधि-समूलनिरासद्वारा सद्यआरोग्यार्थं श्रीसवितृसूर्यनारायणप्रीत्यर्थं हंसादिसप्ततिनामभिः श्रीसूर्य्याय सप्तत्यर्घ्यदानमहं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य भूतशुद्ध्यादि कृत्वा सम्मान्यार्घ्यं कल्पयेत्।

विगृह्य पाणियुग्मेन ताम्रपात्रं सुनिर्म्मलम्। जानुभ्यामवनीं गत्वा परिपूर्य्य जलेन च॥
करवीरादिकुसुमैः रक्तचन्दनमिश्रितैः। दूर्वाङ्कुरैरक्षतैश्च निक्षिप्तैः पात्रमध्यतः॥
दद्यादर्घ्यमनर्घाय सवित्रे ध्यानपूर्वकम्। उपमौलिसमानीय तत्पात्रं नान्यदिङ्मनाः॥
प्रतिमन्त्रं नमस्कुर्यादुदयास्तमिते रवौ। अनया नामसप्तत्या महामन्त्ररहस्यया॥

एवमर्घ्यं प्रकल्प्य पाद्यादिभिः सम्पूज्य प्रणम्य यथोक्तविधिना प्रत्येकनाम्ना बृहत्पात्रे घटे जले वा अर्घ्यं दद्यात्। तद्यथा—ॐ हंसाय नमः ॥ १ ॥ ॐ भानवे नमः ॥ २ ॥ ॐ सहस्रांशवे नमः ॥ ३ ॥ ॐ तपनाय नमः ॥ ४ ॥ ॐ तापनाय नमः ॥ ५ ॥ ॐ रवये नमः ॥ ६ ॥ ॐ विकर्त्तनाय नमः ॥ ७ ॥ ॐ विवस्वते नमः ॥ ८ ॥ ॐ विश्वकर्म्मणे नमः ॥ ९ ॥ ॐ विभावसवे नमः ॥ १० ॥ ॐ विश्वरूपाय नमः ॥ ११ ॥ ॐ विश्वकर्त्रे नमः ॥ १२ ॥ ॐ मार्तण्डाय नमः ॥ १३ ॥ ॐ मिहिराय नमः ॥ १४ ॥ ॐ अंशुमते नमः ॥ १५ ॥ ॐ आदित्याय नमः ॥ १६ ॥ ॐ उष्णगवे नमः ॥ १७ ॥ ॐ सूर्य्याय नमः ॥ १८ ॥ ॐ अर्य्यम्णे नमः ॥ १९ ॥ ॐ ब्रध्नाय नमः ॥ २० ॥ ॐ दिवाकराय नमः ॥ २१ ॥ ॐ द्वादशात्मने

नमः ॥ २२ ॥ ॐ सप्तहयाय नमः ॥ २३ ॥ ॐ भास्कराय नमः ॥ २४ ॥ ॐ अहस्कराय नमः ॥ २५ ॥ ॐ खगाय नमः ॥ २६ ॥ ॐ सुराय नमः ॥ २७ ॥ ॐ प्रभाकराय नमः ॥ २८ ॥ ॐ श्रीमते नमः ॥ २९ ॥ ॐ लोकचक्षुषे नमः ॥ ३० ॥ ॐ ग्रहेश्वराय नमः ॥ ३१ ॥ ॐ लोकेशाय नमः ॥ ३२ ॥ ॐ लोकसाक्षिणे नमः ॥ ३३ ॥ ॐ तमोऽरये नमः ॥ ३४ ॥ ॐ शाश्वताय नमः ॥ ३५ ॥ ॐ शुचये नमः ॥ ३६ ॥ ॐ गभस्तिहस्ताय नमः ॥ ३७ ॥ ॐ तीव्रांशवे नमः ॥ ३८ ॥ ॐ तरणये नमः ॥ ३९ ॥ ॐ सुमहोरुणये नमः ॥ ४० ॥ ॐ द्युमणये नमः ॥ ४१ ॥ ॐ हरिदश्वाय नमः ॥ ४२ ॥ ॐ अर्काय नमः ॥ ४३ ॥ ॐ भानुमते नमः ॥ ४४ ॥ ॐ भयनाशनाय नमः ॥ ४५ ॥ ॐ छन्दोश्वाय नमः ॥ ४६ ॥ ॐ वेदवेद्याय नमः ॥ ४७ ॥ ॐ भास्वते नमः ॥ ४८ ॥ ॐ पूष्णे नमः ॥ ४९ ॥ ॐ वृषाकपये नमः ॥ ५० ॥ ॐ एकचक्ररथाय नमः ॥ ५१ ॥ ॐ मित्राय नमः ॥ ५२ ॥ ॐ मन्देहारये नमः ॥ ५३ ॥ ॐ तमिस्रहन्त्रे नमः ॥ ५४ ॥ ॐ दैत्यहन्त्रे नमः ॥ ५५ ॥ ॐ पापहर्त्रे नमः ॥ ५६ ॥ ॐ धर्म्माय नमः ॥ ५७ ॥ ॐ अधर्म्याय नमः ॥ ५८ ॥ ॐ प्रकाशकाय नमः ॥ ५९ ॥ ॐ हेलिकाय नमः ॥ ६० ॥ ॐ चित्रभानवे नमः ॥ ६१ ॥ ॐ कलिघ्नाय नमः ॥ ६२ ॥ ॐ ताक्ष्यर्वाहनाय नमः ॥ ६३ ॥ ॐ दिक्पतये नमः ॥ ६४ ॥ ॐ पद्मिनीनाथाय नमः ॥ ६५ ॥ ॐ कुशेशयकराय नमः ॥ ६६ ॥ ॐ हरये नमः ॥ ६७ ॥ ॐ घर्मरश्मये नमः ॥ ६८ ॥ ॐ दुर्निरीक्ष्याय नमः ॥ ६९ ॥ ॐ चण्डांशवे नमः ॥ ७० ॥ (ॐ कश्यपात्मजाय नमः)।

एभिः सप्ततिसङ्ख्याकैः पुण्यैः सूर्य्यस्य नामभिः। प्रणवादिचतुर्थ्यन्तैर्नमस्कारसमायुतैः ॥
प्रत्येकमुच्चरन्नाम दृष्ट्वा-दृष्ट्वा दिवाकरम्। एवं कुर्वन्नरो याति न दारिद्र्यं न शोकभाक् ॥
व्याधिभिर्मुच्यते घोरैरपि जन्मान्तरार्जितैः। विनौषधैर्विना वैद्यैर्विना पथ्यपरिग्रहैः ॥
कालेन निधनं प्राप्य सूर्य्यलोके महीयते।

इति सर्वव्याधिहरं श्रीसूर्य्यार्घ्यविधानम्।

सूर्यार्घ्य-विधान—शुभ दिन प्रातःकाल नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर आचमन तथा प्राणायाम करके देश-काल का उच्चारण करके 'मम अमुकस्य वा ज्वरादिव्याधिसमूलनाशद्वारा सद्य आरोग्यार्थं श्रीसवितृसूर्यनारायण-प्रीत्यर्थं हंसादिसप्ततिनामभिः श्रीसूर्याय सप्तति अर्घ्यदानमहं करिष्ये' ऐसा सङ्कल्प करके भूतशुद्धि आदि कर अर्घ्य की कल्पना करे।

अर्घ्यनिर्माण-विधि—शुद्ध ताम्रपात्र को अपने दोनों हाथों में ग्रहण करके उसे निर्मल जल से परिपूर्ण करके लाल कनेर आदि के फूलों तथा लाल चन्दन को मिश्रित कर दूर्वाङ्कुरों तथा अंक्षतों का निक्षेप उस पात्रस्थ जल में करके घुटनों को धरती पर टेककर ध्यानपूर्वक अनर्घ्य सूर्यनारायण को अर्घ्य दे। अर्घ्य देते समय अर्घ्य को शिर से लगाकर सूर्य की दिशा में देना चाहिये। यह अर्घ्य उदित तथा अस्तकाल में आगे लिखे ७० मन्त्रों के उच्चारण के साथ किसी बड़े घड़े या पात्र से (मन्त्रों के उच्चारण पूर्ण होने तक निरन्तर) देते रहना चाहिये।

अर्घ्यदान के सत्तर मन्त्र—मूल पाठ में 'ॐ हंसाय नमः' से लेकर 'ॐ चण्डांशवे नमः' पर्यन्त कुल सत्तर मन्त्र लिखे हैं, उनसे ही अर्घ्य देना चाहिये। इस प्रकार से सूर्य के सत्तर नामों के पूर्व ॐ तथा पश्चात् चतुर्थी विभक्ति के उपरान्त नमः लगाकर प्रत्येक नाम का उच्चारण करते हुए सूर्य की ओर देख-देखकर जो मनुष्य अर्घ्य देता है, उसे दरिद्रता तथा शोक प्राप्त नहीं होता है। वह घोर व्याधियों से मुक्त होकर जिन्हें उसने जन्मान्तरों में अर्जित किया है, वे सब रोग बिना औषधि, वैद्य तथा पथ्यपरिग्रह के ही ठीक हो जाते हैं। समय पर उसकी मृत्यु होती है तथा वह सूर्यलोक में आनन्द करता है।

विमर्श—संस्कृत का 'अर्घ्य' शब्द ही घिसकर यूनानी अरबी चिकित्सा पद्धति में 'अर्क' बन गया है, जो सुगन्धित द्रव्यों तथा मृदु वनस्पतियों को जल में भिगोकर उनके वाष्पीकरण द्वारा बनाया जाता है, जैसे—

अर्कगुलाब, अर्ककेवड़ा, अर्कसन्दल (चन्दन), अर्कसौंफ, अर्कमकोय आदि। अर्घ्य में भी जल को सुगन्धित पुष्पों के प्रक्षेपादि से सुवासित करके ही प्रयोग में लाते हैं।

ज्वरस्तोत्रम्

विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात्। अभ्यपद्यत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश॥ १॥
अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम्। माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ॥ २॥
माहेश्वरः समाक्रन्दन्वैष्णवेन बलार्दितः। अलब्ध्वाभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वरः॥ ३॥
शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रयताञ्जलिः।

ज्वरस्तोत्र—भूतगणों के पलायन कर जाने पर तीन शिर तथा तीन पैरों वाला ज्वर दशों दिशाओं को जलाता हुआ भगवान् श्रीकृष्ण की ओर दौड़ पड़ा। तब भगवान् ने उसे अपनी ओर आता हुआ देखकर उसके प्रतिकारहेतु नारायण ज्वर को छोड़ दिया। तब माहेश्वर ज्वर तथा नारायण ज्वर दोनों आपस में लड़ने लगे। अन्ततः वैष्णव ज्वर के द्वारा पराभूत माहेश्वर ज्वर अन्यत्र अभय न देखकर हृषीकेश से हाथ जोड़कर बोला॥ १-३॥

ज्वर उवाच—

नमामि त्वाऽनन्तशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम्।
विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद्ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गं प्रशान्तम्॥ ४॥
कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः।
तत्सङ्घातो बीजरोहप्रवाहस्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये॥ ५॥
नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान् साधूँल्लोकसेतून् विभर्षि।
हंस्युन्मार्गान् हिंसया वर्तमानाञ्जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः॥ ६॥
तप्तोऽहं ते तेजसा दुःसहेन शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण।
तावत्तापो देहिनां तेंऽघ्रिमूलं नो सेवेरन्यावदाशानुबद्धाः॥ ७॥

ज्वर बोला—आप परेश अनन्तशक्ति सर्वात्मा तथा सर्वस्वरूप हैं। संसार की उत्पत्ति, स्थिति, तथा संहार के कारण आप ही हैं। श्रुतियों में आपका ही वर्णन तथा अनुमान किया जाता है। आप समस्त विकारों से रहित स्वयंब्रह्म हैं; अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ। काल दैव, (अदृष्ट), कर्म, जीव, स्वभाव, सूक्ष्मभूत शरीर, सूत्रात्मा प्राण, अहङ्कार, एकादश इन्द्रियाँ तथा पञ्च महाभूत—इन सबका सङ्घात यह लिङ्गशरीर है। बीजाङ्कुर न्याय के अनुसार उससे कर्म तथा कर्म से फिर लिङ्गशरीर की उत्पत्ति होती है। यह सब आपकी माया है। आप माया के निषेध की परम अवधि हैं। मैं आपकी शरण में जाता हूँ। हे प्रभो! आप ही अपनी लीला से अनेकों रूप धारण करते हैं तथा देवताओं, लोकों एवं साधु-सन्तों का पालन करते हैं; साथ ही उन्मार्गगामी असुरों का संहार भी करते हैं। आपका यह अवतार पृथ्वी का भार उतारने के लिये ही हुआ है। मैं आपके तेज से तप्त उत्पन्न उल्वण ज्वर से अत्यन्त सन्तप्त हो रहा हूँ। हे प्रभो! जीवों को तभी तक सन्ताप रहता है जब तक वे आशाओं के पाश में बँधे रहकर आपकी शरण में नहीं जाते हैं॥ ४-७॥

श्रीभगवानुवाच—

त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम्। यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद्भयम्॥ ८॥
इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः। बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यञ्जनार्दनम्॥ ९॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे ज्वरकृतस्तोत्रम्।

श्री भगवान् बोले—हे त्रिशिर! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुम मेरे ज्वर से भय मत करो। जो मनुष्य मेरे और तुम्हारे इस संवाद का स्मरण करेंगे, उन्हें ज्वर का भय नहीं रहेगा। भगवान् के ऐसा कहने पर वह माहेश्वर ज्वर अच्युत को प्रणाम करके चला गया और बाणासुर भी रथ पर आरूढ़ होकर श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिये पुनः आ डटा॥ ८-९॥

ज्वरतर्पणम्

महार्णवे—

योऽसौ सरस्वतीतीरे कुत्सगोत्रसमुद्भवः। त्रिरात्रज्वरदाहेन मृतो गोविन्दसंज्ञकः॥ १॥
ज्वरापनुत्तये तस्मै ददाम्येतत्तिलोदकम्।

तथा—

गङ्गाया उत्तरे कूले अपुत्रस्तापसो मृतः। रात्रौ ज्वरविनाशाय तस्मै दद्यात्तिलोदकम्॥ २॥

इति मन्त्रद्वयेन तिलरक्ताक्षतरक्तपुष्पादियुतजलेन ज्वरानुसारेणाष्टोत्तरशताद्ययुतं तर्पणं ज्वरमुद्दिश्य कर्त्तव्यम्।

इति ज्वरतर्पणम्।

ज्वरतर्पण (महार्णव के अनुसार)—इस सरस्वती के तीर पर जो कुत्स गोत्र में उत्पन्न गोविन्द नामक व्यक्ति त्रिरात्र ज्वर के कारण मर गया है, उसके लिये यह तिलोदक दिया जाता है। गङ्गा के उत्तर किनारे पर जो अपुत्र तापस मर गया है, रात्रिज्वर के विनाश के लिये उसे तिलोदक दिया जाता है। इस भावार्थ को प्रकट करने वाले इन दो मन्त्रों को उच्चारित करके काले तिल, लाल चावल, लाल फूल आदि से युक्त जल के द्वारा ज्वर के अनुसार एक सौ आठ तर्पण उस ज्वर के लिये करना चाहिये।

सर्वरोगहरमच्युतानन्तगोविन्देति नामत्रयविधानम्

ॐ अच्युतानन्द गोविन्देति नामत्रयस्य वसिष्ठकश्यपनारदा ऋषयः। उष्णिग्गायत्रीपुरुषप्रकृतीसुतलच्छन्दांसि। महाविष्णुमहानृसिंहमहावराहा देवताः। अमुकरोगशान्तये जपे विनियोगः। अस्य मन्त्रस्य रोगानुसारेण सहस्रमयुतं लक्षं वा जपं कृत्वा जपान्ते दशांशेन तिलपायसहोमं तद्दशांशेन तर्पणं तद्दशांशेन मार्ज्जनं तद्दशांशेन शक्त्या वा ब्राह्मणभोजनं च कुर्य्यात्। तथा च वीरसिंहावलोकने शङ्करगीतावाक्यम्—

अच्युतानन्तगोविन्देत्येतन्नामत्रयं द्विजः। अयुतत्रयसङ्ख्याकं जपं कुर्य्याद्धि शान्तये॥

इति नामत्रयविधानम्।

सर्वरोगनाशक नामत्रय का विधान—अच्युत, अनन्त, गोविन्द—इन तीन नामों के वसिष्ठ, कश्यप तथा नारद ऋषि हैं। उष्णिक्, गायत्री, पुरुष, प्रकृति तथा सुतल छन्द हैं। महाविष्णु, महानृसिंह तथा महावराह देवता हैं। अमुक रोग की शान्तिहेतु नामत्रय के जप में विनियोग है। इस मन्त्र का रोगानुसार एक सहस्र, अयुत अथवा लक्षसंज्ञक जप करके अन्त में दशांश संख्या में तिल-पायस से होम करके उसके दशांश तर्पण, तद्दशांश मार्जन तथा तद्दशांश अथवा यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। जैसा कि वीर सिंहावलोक में शङ्करगीता का वाक्य दिया गया है—अच्युत, अनन्त तथा गोविन्द—इन तीन नामों का द्विज अयुत संख्या में जप करे। तो व्याधि की शान्ति होती है।

सर्वव्याधिहरं विष्णुसहस्रनामविधानम्

तदुक्तं महाभारते—

सहस्रनामस्तोत्रं च सर्वं वारत्रयं जपेत्। मृत्युरोगप्रशान्त्यर्थमात्मनश्च शुभाप्तये॥

तत्र प्रयोगः—सुमुहूर्त्ते शिवालयादिषु कृतनित्यक्रियः स्वासने प्राङ्मुख उपविश्य आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ सङ्कीर्त्य 'ममामुकव्याधेः समूलनाशद्वारा सद्य आरोग्यार्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थममुकसङ्ख्यया विष्णुसहस्त्रनामजपं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य गणेशस्मरणं कृत्वा स्वपुरतः आधारे अन्यलिखितपुस्तकं संस्थाप्य गन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्य शापविमोचनं पठेत्। ॐ अस्य श्रीविष्णोः सहस्त्रनाम्नां रुद्रशापमोचनमन्त्रस्य महादेव ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीरुद्रानुग्रहशक्तिर्देवता। सुरेशः शरणं शर्मेति बीजम्। अनन्तो हुतभुग्भोक्तेति शक्तिः। सुरेश्वरायेति कीलकम्। रुद्रशापविमोचने विनियोगः। ॐ क्लीं ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। इति करन्यासः। एवमेव हृदयादिन्यासं कृत्वा ध्यायेत्।

अथ ध्यानम्—

तमालश्यामलतनुं　पीतकौशेयवाससम्। वर्णमूर्तिमयं　देवं　ध्यायेन्नारायणं　विभुम्॥

इति ध्यात्वा मानसोपारैः सम्पूज्य 'ॐ क्लींह्रांह्रींह्रूंह्रैंह्रौंह्रः स्वाहा' इति मन्त्रं शतवारं दशवारं वा जप्त्वा किञ्चिज्जलं क्षिप्त्वा प्रार्थयेत्। 'ॐ श्रीविष्णोः सहस्त्रनामस्तवो रुद्रशापविमुक्तो भव' इति प्रार्थ्य सततं तदनन्तरं सहस्त्रनामपठनं कुर्य्यात्।

विष्णोः　सहस्त्रनाम्नां　यो　ह्यकृत्वा　शापमोचनम्। पठेच्छुभानि　सर्वाणि　स्युस्तस्य　निष्फलानि　तु॥

इत्यगस्तिसंहितायां रुद्रशापविमोचनम्।

सर्वव्याधिनाशक विष्णुसहस्त्रनाम प्रयोग—महाभारत में कहा गया है—मृत्यु तथा रोग की शान्ति के लिये एवं आत्म-कल्याण के लिये प्रतिदिन त्रिकाल समय (प्रातः, मध्याह्न, सायं) श्रीविष्णुसहस्त्रनाम का जप करना चाहिये।

शापमोचन—अगस्त्यसंहिता के अनुसार सर्वप्रथम विष्णु सहस्त्रनाम का शाप-विमोचन कर्म करना चाहिये। वह इस प्रकार है—सुमुहूर्त में शिवालय आदि में नित्यक्रिया से निवृत्त होकर अपने आसन पर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके बैठकर आचमन तथा प्राणायाम कर देश-काल का उच्चारण करके 'ममामुकव्याधिसमूलनाशद्वारा सद्य आरोग्यार्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं अमुकसङ्ख्यया विष्णुसहस्त्रनामजपं करिष्ये' ऐसा सङ्कल्प करके श्रीगणेशजी का स्मरण कर शाप-विमोचनार्थ न्यास करे। सर्वप्रथम 'ॐ अस्य श्रीविष्णोः सहस्त्रनाम्नां रुद्रशापमोचनमन्त्रस्य महादेव ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीरुद्रानुग्रहशक्तिर्देवता। सुरेशः शरणं शर्मेति बीजम्। अनन्तो हुतभुक् भोक्तेति शक्तिः। सुरेश्वरायेति कीलकम्। रुद्रशापविमोचने विनियोगः' यह मन्त्र कहकर रुद्रशाप-विमोचनार्थ पृथ्वी पर जल छोड़े। शाप-विमोचन मन्त्र-हेतु ऋष्यादिन्यास करके मूलोक्त 'ॐ क्लीं ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः' इत्यादि छः मन्त्रों से करन्यास करे। तदनन्तर 'ॐ क्लीं ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं कवचाय हुम्, ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः अस्त्राय फट्' इन छः मन्त्रों से हृदयादि षडङ्ग न्यास करे। फिर मूल में लिखित 'तमालश्यामलतनुं पीतकौशेयवासम्। वर्णमूर्तिमयं देवं ध्यायेन्नारायणं विभुम्॥' (तमालपत्र के समान श्यामल शरीर वाले, पीतकौशेय वस्त्रधारी, चारो वर्णों के मूर्तिमान् स्वरूप विभु देव नारायण का ध्यान करे) मन्त्र से ध्यान करना चाहिये। फिर मानसोपचारों से देव नारायण का पूजन करके 'ॐ क्लीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः स्वाहा' यह विष्णुसहस्त्रनाम का शाप-विमोचन मन्त्र है, इसे एक सौ बार या दश बार जपना चाहिये तथा थोड़ा-सा जल हाथ में लेकर फेंककर प्रार्थना करे—'ॐ श्रीविष्णोः सहस्त्रनामस्तवो रुद्रशापविमुक्तो भव'। इसके उपरान्त एक बार निरन्तर विष्णुसहस्त्रनाम का पाठ कर ले तो वह शापविमुक्त हो जाता है। इस प्रकार जो विष्णु सहस्त्रनाम का पाठ करने के पूर्व शाप-विमोचन करके पढ़ता है, उसका अनुष्ठान सफल होता है। यदि बिना शाप-विमोचन किये पाठ करे तो वह निष्फल होता है।

अथ सहस्त्रनामस्तोत्रस्य न्यासध्यानादिप्रकारः—ॐ अस्य श्रीविष्णोर्दिव्यसहस्त्रनामस्तोत्रमालामन्त्रस्य श्रीभगवान् वेदव्यास ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीकृष्णः परमात्मा देवता। आत्मयोनिः स्वयं जात इति बीजम्। देवकीनन्दनः स्त्रष्टेति शक्तिः। उद्भवः क्षोभणो देव इति परमो मन्त्रः। शङ्खभृन्नन्दकी चक्रीति कीलकम्। त्रिसामासामगः सामेति कवचम्। शार्ङ्गधन्वा गदाधर इत्यस्त्रम्। ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कार इति ध्यानम्। श्रीकृष्णप्रीत्यर्थे अमुकरोगनिवारणार्थे नामसहस्त्रपाठे विनियोगः। ॐ वेदव्यासऋषये नमः शिरसि॥ १॥ ॐ अनुष्टुप् छन्दसे नमो मुखे॥ २॥ ॐ श्रीकृष्णपरमात्म-देवतायै नमः हृदये॥ ३॥ ॐ आत्मयोनिः स्वयं जात इति बीजाय नमो गुह्ये॥ ४॥ ॐ देवकीनन्दनः स्त्रष्टेति शक्तये नमः पादयोः॥ ५॥ ॐ शङ्खभृन्नन्दकी चक्रीति कीलकाय नमः सर्वाङ्गे॥ ६॥ इति ऋष्यादिन्यासः। अथ करन्यासः—ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कार इत्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः॥ १॥ ॐ अमृतांशूद्भवो भानुरिति तर्जनीभ्यां नमः॥ २॥ ॐ ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद्ब्रह्मेति मध्यमाभ्यां नमः॥ ३॥ ॐ सुवर्णबिन्दुरक्षोभ्य इत्यनामिकाभ्यां नमः॥ ४॥ ॐ आदित्यो ज्योतिरादित्य इति कनिष्ठिकाभ्यां नमः॥ ५॥ ॐ शार्ङ्गधन्वा गदाधर इति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः॥ ६॥ इति करन्यासः। एवमेव हृदयादिषडङ्गन्यासं कृत्वा ध्यायेत्।

अथ ध्यानम्—

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्॥

इति ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य ॐ नारायणाय नमः॥ १॥ ॐ नराय नमः॥ २॥ ॐ नरोत्तमाय नमः॥ ३॥ ॐ देव्यै नमः॥ ४॥ ॐ सरस्वत्यै नमः॥ ५॥ ॐ व्यासाय नमः॥ ६॥ इति नमस्कृत्य स्पष्टपदाक्षरं स्तोत्रं पठेत्। अस्य पुरश्चरणं रोगानुसारेण सहस्त्रमयुतं लक्षं वा जपदशांशतस्तिलपायसाज्यैर्होमः। होमस्तु सहस्त्रनामभिः स्वाहान्तैः कार्य्यः। अन्यत्सर्वं यथाविधि कुर्य्यात्। सद्य आरोग्यतासिद्धये अच्युतानन्त गोविन्देति नामत्रयेण सम्पुटितस्य सहस्त्रनामस्तवस्य जपः कार्य्यः। अथवा—

ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने। प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनमः॥ १॥
इत्यनेन।

ॐ आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्। लोकाभिरामं श्रीरामं भूयोभूयो नमाम्यहम्॥ २॥
इति मन्त्रेण वा सम्पुटितस्य जपेन सर्वरोगनाशः।

इति ज्वरहराणि।

मुख्य प्रयोग—सहस्त्रनामस्तोत्र के न्यासादि शापविमोचनोपरान्त इस प्रकार करना चाहिये। सर्वप्रथम 'ॐ अस्य श्रीविष्णोर्दिव्यसहस्त्रनामस्तोत्रमालामन्त्रस्य श्री भगवान् वेदव्यासऋषिः अनष्टुप् छन्दः। श्रीकृष्णपरमात्मा देवता। आत्मयोनिः स्वयं जात इति बीजम्। देवकीनन्दनः स्त्रष्टेति शक्तिः। उद्भवः क्षोभणो देव इति मन्त्रः। शङ्खभृन्नन्दकी चक्रीति कीलकम्। त्रिसामासामगः सामेति कवचम्। शार्ङ्गधन्वागदाधर इत्यस्त्रम्। ॐ विश्वं वषट्कार इति ध्यानम्। श्रीकृष्णप्रीत्यर्थे अमुक- रोगनिवारणार्थे नामसहस्त्रपाठे विनियोगः' इस मन्त्र को पढ़कर विनियोग करे। तदनन्तर ॐ वेदव्यास ऋषये नमः शिरसि इत्यादि मूल पाठ में लिखे छः मन्त्रों से ऋष्यादि न्यास करे। फिर उसके आगे 'ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कार इत्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः' इत्यादि छः मन्त्रों से करन्यास करे। फिर 'ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कार इति हृदयाय नमः, ॐ अमृतांशूद्भवो भानुरिति शिरसे स्वाहा, ॐ ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद्ब्रह्मेति शिखायै वषट्, ॐ सुवर्णविन्दुरक्षोभ्यः इति कवचाय हुम्, ॐ आदित्यो ज्योतिरादित्य इति नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ शार्ङ्गधन्वा गदाधर इति अस्त्राय फट्' इन मन्त्रों से हृदयादि षडङ्गन्यास सम्पन्न करे। फिर 'शान्ताकारं भुजगशयनं०' इत्यादि श्लोक से ध्यान करे। ध्यानोपरान्त मानसोपचारों से विष्णु की पूजा कर 'ॐ नारायणाय नमः, ॐ नराय नमः, ॐ नरोत्तमाय नमः,

ॐ देव्यै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः, ॐ व्यासाय नमः' इन छः नामों से विष्णु को नमस्कार करे। इसके उपरान्त स्पष्ट उच्चारण के साथ श्रीविष्णुसहस्रनाम स्तोत्र का पाठ करे।

पुरश्चरण—विष्णुसहस्रनाम का पुरश्चरण रोग के अनुसार एक सहस्र, एक अयुत अथवा एक लक्ष होता है। जप का दशांश तिल-पायसादि से होम सहस्रनामों में चतुर्थी विभक्ति तथा स्वाहा लगाकर करना चाहिये। जप का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन तथा मार्जन का दशांश अथवा शक्ति के अनुसार अधिक भी ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये।

श्रीविष्णुसहस्रनाम के पुरश्चरण में कर्माङ्गों का संख्यान अन्य युगों में

पुरश्चरण के अङ्ग	परस्पर अनुपात	सामान्य रोग में	मध्यम रोग में	तीव्र रोग में	कलियुग में		
					सामान्य	मध्यम	तीव्र रोग
१. जप	एक	एक सहस्र	एक अयुत	एक लक्ष	चार सहस्र	चारअयु०	चार लक्ष
२. होम	दशांश	१००	१०००	१०,०००	४००	४०००	४०,०००
३. तर्पण	शतांश	१०	१००	१०००	४०	४००	४०००
४. मार्जन	सहस्रांश	१	१०	१००	४	४०	४००
५. ब्राह्मणभोजन	अयुतांश	१	१०	१०	४	४	४०

सम्पुट—(१) श्री आरोग्य चाहने के लिये 'अच्युतानन्त गोविन्द नामस्मरणभेषजात्। नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं-सत्यं वदाम्यहम्' इस मन्त्र का प्रत्येक नाम के अन्त में सम्पुट लगाना चाहिये अथवा प्रतिश्लोक में सम्पुट लगाये। (२) अथवा 'कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने। प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥' इस मन्त्र का सम्पुट लगाकर पाठ करे। (३) अथवा 'आपदामपहर्त्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्। लोकाभिरामं श्रीरामं भूयोभूयो नमाम्यहम्॥' इस मन्त्र से सम्पुटित पाठ करना चाहिये। इससे सभी रोगों का नाश होता है।

अतिसारशमनविधानम्

अग्न्युपशमी अतिसारी भवति तडागभेत्ता च इति। सोऽग्निरस्मीत्यृचं दशसहस्र १०००० सङ्ख्यया जपेत्। तिलाज्यद्रव्येण जुहुयात् हिरण्यं च दद्यात्।

इत्यतिसारशमनम्।

अतिसार का निदान तथा उपचार—जो कुलपरम्परागत प्रज्वलित अग्नि अथवा अखण्ड ज्योति को शान्त कर देता है, उसे कर्मज व्याधि के रूप में घोर असाध्य अतिसार (दस्त) का रोग होता है। किसी जलाशय या पानी की टंकी या कूप या नलकूप आदि को नष्ट करने का भी यही फल होता है। इसकी शान्ति के लिये 'ॐ सोऽग्निरस्मि' इस ऋचा का जप दश सहस्र की संख्या में करके एक सहस्र हवन उसी ऋचा से तिल तथा घृत से करना चाहिये एवं स्वर्ण का दान करना चाहिये।

संग्रहणीशमनम्

यः पुनः स्वीयां भार्यामनन्यगतिकां कारणमन्तरेण परित्यजति स जन्मान्तरे संग्रहणीरोगवान् भवति। तच्छान्तये शिवसङ्कल्पसूक्तमष्टोत्तरसहस्रं जपेत्। मधु हिरण्यं च दद्यात्। तथा च शिवगीतायाम्—

साध्वीं भार्यां च यो मर्त्यः परित्यजति कामतः। ग्रहणीरोगसंयुक्तः सदा भवति मानवः॥
शिवसङ्कल्पसूक्तेन जपेदष्टोत्तरं शतम्।

इति सङ्ग्रहण्युपशमनम्।

संग्रहणी रोगशमन का उपाय—(महीनों पुराने दस्तों को संग्रहणी कहते हैं) जो पुरुष अपनी पतिव्रता (वफादार) पत्नी को बिना कारण के त्याग देता है, अगले जन्म में उसे संग्रहणी रोग होता है। उसकी शान्ति-हेतु

शुक्ल यजुर्वेद के शिवसङ्कल्प सूक्त को एक हजार आठ की संख्या में जपना चाहिये तथा मधु एवं सुवर्ण का दान भी करना चाहिये। शिवगीता में कहा है—जो व्यक्ति अपनी साध्वी भार्या को कामेच्छा की पूर्ति के लिये दूसरी को अपनाकर त्याग देता है, वह अगले जन्म में संग्रहणी रोग से पीड़ित होता है। शिवसङ्कल्प सूक्त के एक सौ आठ जप से संग्रहणी शान्त होती है।

अर्शोरोगशमनम्

वेतनमादाय योऽध्यायपयत्यर्च्चयति जुहोति जपति सोऽर्शोरोगवान् भवति। स कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रायणानि कृत्वा पुरुषसूक्तम्। उद्यन्नमृचम्। आदित्यहृदयं वा। अग्निवर्णमित्यादिसूक्तं व्याधिगुरुलघुभावेन वापेक्ष्यासहस्रमयुतं वा जपेत्। सघृतं हिरण्यं च दद्यात्। इत्यर्शोघ्नप्रतीकारः।

अर्शरोग-उपशमन की विधि—जो व्यक्ति इस जन्म में वेतन लेकर वेद पढ़ता है, जप करता है, वह अर्शरोग (बवासीर) से अगले जन्म में पीड़ित होता है। उसे कृच्छ्रव्रत, अतिकृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करके पुरुषसूक्त, उद्यन्न ऋचा को अथवा आदित्य हृदय का पाठ करना चाहिये अथवा 'अग्निवर्णा' इत्यादि सूक्त का जप रोग की गम्भीरता के अनुसार एक सहस्र अथवा एक अयुत जपे तथा घृत के साथ स्वर्ण का दान भी करना चाहिये।

अजीर्णमन्दाग्निशमनम्

ऋग्विधाने—

यस्य भुक्तं न जीर्येत न तिष्ठेद्वा कथञ्चन। तस्यान्नस्यानुरोधत्वादग्निरस्मीत्यृचं जपेत्॥

वृद्धपराशरः—अग्निसूक्तं जपेन्नित्यं श्रीसूक्तं च विचक्षणः इति। जातवेदसे इति मन्त्रजपं वा कुर्य्यात्। अथवा मन्दाग्निशान्तये राजतं मेषं यथाविधि दद्यात्।

अजीर्ण एवं मन्दाग्नि का उपाय—ऋग्विधान के अनुसार जिसका खाया हुआ अन्न न पचता हो अथवा जिसे भस्मक रोग हो, उसे 'अग्निरस्मि' इत्यादि ऋचा का जप करना चाहिये। वृद्धपराशर के अनुसार उस व्यक्ति को नित्य ही अग्निसूक्त का जप अथवा श्रीसूक्त का जप करना चाहिये अथवा उसे 'जातवेदसे' इत्यादि मन्त्र का जप करना चाहिये अथवा मन्दाग्नि को शान्त करने के लिये चाँदी का मेष (भेड़ा या बकरा) बनवाकर दान करना चाहिये। इससे अजीर्ण तथा मन्दाग्नि जब पूर्वजन्म के दोष से उत्पन्न होते हैं तब शान्त हो जाते हैं।

विषूचिकोपशमनविधानम्

योगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे एकोनसप्ततितमे सर्गे—

दुर्भोजना दुरारम्भा मूर्खा दुःस्थितयश्च ये। दुर्देशवासिनो दुष्टास्तेषां हिंसां करिष्यसि॥
प्रविश्य हृदयं प्राणैः पद्मप्लीहादिबाधनात्। वातलेखात्मिका व्याधिर्भविष्यसि विषूचिका॥
सगुणं निर्गुणं चैव जनमासादयिष्यसि। गुणान्वितचिकित्सार्थं मन्त्रोऽयं तु मयोच्यते॥

विषूचिका-उपशमन विधान—योगवासिष्ठ के उत्पत्ति प्रकरण के उनहत्तरवें सर्ग में कहा गया है—जो दुर्भोजन (प्रदूषित भोजन, चटपटा भोजन, फास्टफूड, समोसा आदि) करते हैं, जो बुरे कार्यों को आरम्भ करते हैं, जो मूर्ख हैं तथा दुःस्थितियों (कुसङ्ग) में निवास करते हैं, दुर्देश या दुर्ग्राम, दुर्नगर आदि में रहते हैं तो वहाँ के दुष्ट (हानिकारक कीटाणु) उनकी हिंसा करेंगे। वे हृदय, फुफ्फुस, मस्तिष्क, प्लीहा आदि में बाधा उत्पन्न करेंगे। उन्हें वातलेखात्मिका व्याधि विषूचिका होगी। वह विद्वान् या मूर्ख सभी को एक साथ मारेगी। उसकी लाभकारी चिकित्सा के लिये यह मन्त्र बताया जाता है।

ब्रह्मोवाच—

हिमाद्रेरुत्तरे पार्श्वे कर्कटी नाम राक्षसी। विषूचिकाभिधाना सा नाम्नाप्यन्या यवाधिका॥

तस्या मन्त्रो यथा—'ॐ ह्रींह्रींरांरां विष्णुशक्तये नमः। ॐ भगवति विष्णुशक्तिमेनाम् ॐ हरहर नयनय पचपच मथमथ उत्सादय दूरे कुरु स्वाहा हिमवन्तं गच्छ जीव सः सः सः चन्द्रमण्डलगतोऽसि स्वाहा॥

इति मन्त्री महामन्त्रं न्यस्य वामकरोदरे। मार्ज्जयेदातुराकारं तेन हस्तेन संयुतः॥
हिमशैलाभिमुख्येन विद्रुतान्तां विचिन्तयेत्। कर्कटीं कर्कशाक्रन्दां मन्त्रमुद्गरमर्दिताम्॥
आतुरं चिन्तयेच्चण्टे रसायनहृदि स्थितम्। अजरामरणं युक्तं मुक्तं सवाधिविभ्रमैः॥
साधको हि शुचिर्भूत्वा स्वाचान्तः सुसमाहितः। क्रमेणानेन सकलां प्रोच्छिनन्ति विषूचिकाम्॥

इति विषूचिकाप्रतीकारः।

ब्रह्माजी बोले—हिमालय के उत्तरी पार्श्व में कर्कटी नाम की राक्षसी है। उसी का नाम विषूचिका भी है, वह अन्य नाम यवाधिका से भी पुकारी जाती है। उसका मन्त्र है—ॐ ह्रीं ह्रीं रां रां विष्णुशक्तये नमः। ॐ नमो भगवति विष्णुशक्तिमेनाम् ओं हर-हर नय-नय, पचपच, मथमथ, उत्सादय दूरे कुरु कुरु स्वाहा। हिमवन्तं गच्छ जीवः सः सः सः चन्द्रमण्डलगतोऽसि स्वाहा'। इस महामन्त्र का साधक वाम कर तथा उदर में न्यास करे। उसी हाथ से रोगी के आकार का मार्जन करे। हिमशैलाभिमुख होकर वह राक्षसी भाग रही है—ऐसा चिन्तन करे। रोगी को चिन्तन करना चाहिये कि वह कर्कश आक्रन्द करने वाली राक्षसी मन्त्ररूपी मुद्गर (मोगरे) से मर्दित होकर भाग रही है। मन्त्रसाधक पवित्र होकर सुवाचा को अन्त:करण में समाहित करके इस उपचार को करे तो विसूचिका की महामारी चली जाती है।

पाण्डुरोगोपशमनविधानम्

देवब्राह्मणद्रव्यापहारी पाण्डुरोगवान् भवति। स कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रायणानि कुर्यात् कूष्माण्डहोमं च कुर्यात् हिरण्यं वसुधां च दद्यात्। अथवा पूर्वोक्तपृथिवीमन्त्रानुष्ठानं कुर्यादिति पाण्डुरोगोपशमनम्।

पाण्डुरोग-निदान एवं चिकित्सा—जो पूर्वजन्म में देवता एवं ब्राह्मण का द्रव्य हरण करता है, वह पाण्डुरोगी होता है। उसके प्रायश्चित्त के लिये उसे प्रथम कृच्छ्रचान्द्रायण अथवा अतिकृच्छ्रचान्द्रायण व्रत करना चाहिये। तत्पश्चात् कूष्माण्ड होम करना चाहिये। होमोपरान्त स्वर्णदान तथा भूमिदान करना चाहिये अथवा फिर पूर्व में कथित पृथ्वी मन्त्र का अनुष्ठान करना चाहिये। इससे पाण्डुरोग का शमन होता है।

रक्तपित्तोपशमनम्

यः पूर्वजन्मनि वैद्यशास्त्रे मदाद्युक्तौषधमन्यथा कृत्वा प्रयोजयति स शोणितपित्तव्याधिमान् भवति। स ॐ अग्निंदूतं वृणीमह इत्यादिना चरुघृताभ्यामष्टोत्तरायुतमग्नौ जुहुयात्। इति रक्तपित्तोपशमनम्।

रक्तपित्त-निदान चिकित्सा—जो व्यक्ति अपने पूर्वजन्म में वैद्यक शास्त्र के अनुसार मादक द्रव्ययुक्त औषध का प्रयोग अन्यथा रूप में औषध के अतिरिक्त करता है, वह इस जन्म में रक्तपित्ती होती है। उसे 'अग्निदूतं वृणीमहे०' इत्यादि मन्त्र से चरु-घृत के साथ एक सौ आठ आहुतियाँ अग्नि में देनी चाहिये।

क्षयरोगोपशमनविधानम्

महार्णवे—यः पूर्वजन्मनि साक्षाद्ब्रह्मणा क्षयरोगवान् भवति। 'ब्रह्मणा क्षयरोगी स्यात्' इति शातातपोक्तेः। अस्य प्रायश्चित्तमसाध्यरोगोपसृष्टं षडब्दं व्रतमाचरेत्। रोगतारतम्याभावात्प्रायश्चित्ताभावो द्रष्टव्यः। ऋग्विधाने—

असाध्यव्याधिना ग्रस्त उग्रेण प्राणहारिणा। आतेरौद्रेण सूक्तेन प्रत्यृचं वाग्यतः शुचिः॥
पूर्वमाज्याहुतीर्हुत्वा उपस्थाय च शङ्करम्। हविःशेषेण वर्तेत एकोत्तरशतं ततः॥
पूर्णे मासे जयेन्मृत्युं रोगेभ्यश्च प्रमुच्यते। होमकर्मण्यशक्तानां जपस्तद्द्विगुणो भवेत्॥

अथवा त्र्यम्बकमन्त्रपुरश्चरणं कुर्यात्।

इति क्षयोपशमनविधानम्।

क्षयरोग-निदान चिकित्सा—महार्णव के अनुसार पूर्वजन्म में जो साक्षाद् ब्रह्महत्या करता है, उसे इस जन्म में क्षयरोग पीड़ित करता है। इसके प्रायश्चित्त के लिये रोगपीड़ित व्यक्ति को छः वर्षों तक व्रत का पालन (ब्रह्मचर्य-पालन) करना चाहिये। रोग के तारतम्य के अनुसार प्रायश्चित्त का अभाव है। जैसा कि ऋग्विधान में कहा है कि असाध्य उग्र एवं प्राणहारी व्याधि से पीड़ित होने पर अतिरौद्र सूक्त से प्रत्येक ऋचा का शुद्ध उच्चारण करते हुए प्रथम घृत की आहुतियाँ देकर फिर खड़े होकर शर्करा की एक सौ आठ आहुतियाँ देनी चाहिये। एक मास तक ऐसा करने से वह मृत्यु को जीत लेता है तथा रोग से मुक्त हो जाता है। होमकर्म में अशक्त रोगियों को दुगुना जप करना चाहिये। अथवा त्र्यम्बक मन्त्र का पुरश्चरण करना चाहिये।

श्वासकासादिकफरोगोपशमनम्

उमामहेश्वरसंवादे—

कृतघ्नो जायते मर्त्यः कफवाञ्श्वासकासवान्। उष्णज्वरी च नित्यं हि पित्तरोगसमन्वितः॥ इति।

तच्छान्तये पिपीलिकामध्यानि यवमध्यानि वा त्रीणि चान्द्रायणानि कुर्यात्। यथेप्सितं पञ्चाशद्ब्राह्मणान् भोजयेत्।

तद्विष्णोरिति सूक्तेन जपं कुर्याद्द्विजोत्तमः। पूजयेद्भोजयेद्ध्यात्तन्मना नान्यमानसः॥ इति।

अथवा पुरुषसूक्तम्। सहस्त्रनामस्तोत्रम्। उद्यन्नित्यृचं वा प्रत्यष्टोत्तरायुतं जपं कृत्वा चरुघृताभ्यां हुत्वा पञ्चाशद्-ब्राह्मणान् भोजयेत्। महाभारते—

हिरण्यं रक्तवासांसि पञ्चाशद्विप्रभोजनम्। सहस्त्रकलशस्नानं कुर्याद्रोगस्य शान्तये॥ इति।

अथ अच्युतानन्त गोविन्देति नामत्रयमष्टोत्तरायुतत्रयं जपेत्।

इति कफरोगोपशमनम्।

श्वास-कासादि कफरोग-निदान एवं चिकित्सा—श्वास, खाँसी आदि कफरोगों के कारण बताते हुए श्री उमा-महेश्वर संवाद में कहा है कि पूर्वजन्म में जो व्यक्ति कृतघ्न होता है, वह कास-श्वास आदि कफरोगों से इस जन्म में पीड़ित होता है; साथ ही उसे पित्तरोग के साथ उष्णज्वर भी रहता है। उसकी शान्ति के लिये पिपीलिकामध्य चान्द्रायण अथवा यवमध्य चान्द्रायण अथवा तीन चान्द्रायण करना चाहिये। अथवा पुरुषसूक्त, सहस्त्रनामस्तोत्र, 'उद्यन्' इत्यादि ऋचाओं से एक सौ आठ अयुत जप करके चरु एवं घृत से होम कर पचास ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये। महाभारत में कहा है—स्वर्ण, रक्तवस्त्र, पचास ब्राह्मणों का भोजन, सहस्त्र कलशस्नान रोग की शान्ति के लिये करना चाहिये। अथवा १०८ अयुत के तिगुने प्रमाण में अच्युतानन्त गोविन्द इन तीनों नामों का जप करना चाहिये। (एक सौ आठ अयुत=एक लाख अस्सी सहस्त्र तथा इसका तिगुना ५ लाख ४० सहस्त्र होता है)।

वातव्याधिशमनविधानम्

देवब्राह्मणस्वापहरणात् स्वामिद्रोहाद्वातरोगी भवति। अस्य प्रायश्चित्तं कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रायणं कुर्यात्। वीरसिंहावलोकने—

वात आवातमन्त्रोऽयं जप्यतेऽयुतसङ्ख्यया। अग्निरश्मीत्यृचं वापि जपेद्वा जुहुयादपि॥ इति।

धनुर्वाते विशेषस्तत्रैव यः पुनरक्षतयोनिमनिच्छिन्तीं परस्त्रियं बलादाक्रम्योपभुङ्क्ते स सर्वसन्धिषु धनुर्वातरोगवान् वा विषमज्वरी वा तीव्रपीडावान् भवति। तच्छान्तिर्ब्राह्मे—

अपमृत्युप्रशान्त्यर्थं प्रतिरूपं द्विजोत्तमे। प्रदद्यान्महिषीं कृष्णां सवत्सां पूजयेत्ततः॥
सहस्रनामस्तोत्रं वा सर्वं वारत्रयं जपेत्। मृत्युरोगोपशान्त्यर्थमात्मनश्च शुभाप्तये॥

शङ्करगीतायाम्—

अच्युतानन्त गोविन्देत्येतन्नामत्रयद्विजः। अयुतत्रयसङ्ख्याकं जपं कुर्याद्धि शान्तये॥ इति।

अथवा पुरुषसूक्तं जपेत् पापक्षयाद्रोगमोक्षो भवत्येव।

इति वातरोगोपशमनविधानम्।

वातरोग निदान एवं चिकित्सा—वातव्याधि देव-ब्राह्मण के धन हरने से, स्वामीद्रोह से होती है। इसका प्रायश्चित्त कृच्छ्रचान्द्रायण अथवा अतिकृच्छ्रचान्द्रायण है। वीरसिंहावलोक में कहा है—इसमें वात आवात मन्त्र का अयुत संख्या के साथ ही 'अग्निरश्मि०' इत्यादि ऋचा का भी वातरोगी जप तथा हवन भी करना चाहिये।

धनुर्वात में विशेष—जो किसी अक्षत योनि स्त्री को उसकी इच्छा के बिना बलपूर्वक भोगता है, उसे सभी सन्धियों में धनुर्वात (यह टिटेनस नहीं; अपितु अस्थिमृदुता है) होता है अथवा उसे विषमज्वर या तीव्र पीड़ा होती है। उसकी शान्ति ब्रह्मपुराण में कही गई है—अपमृत्यु की शान्ति हेतु उत्तम ब्राह्मण को रोग का प्रतिरूप अथवा काली सवत्सा दुधारू भैंस का दान करना चाहिये अथवा सहस्रनामस्तोत्र का तीन बार जप करना चाहिये। मृत्युरोग तथा आत्मशान्ति एवं शुभ फल के लिये ऐसा करना चाहिये। शङ्करगीता में कहा गया है—अच्युतानन्द गोविन्द—इन तीन नामों को द्विज तीन अयुत (५ लाख ४० हजार) की संख्या में जप करे। अथवा पुरुषसूक्त का जप करे। पुरुषसूक्त के जप से पापों का नाश तथा रोग से मुक्ति होती है। पुरुषसूक्त का भावार्थ ठीक से समझकर उसका जप करना चाहिये, तभी उसका सम्यक् फल प्राप्त होता है; केवल तोतारटन्त जप करने से कोई लाभ नहीं होता; यह ध्यान में रखना चाहिये।

शूलरोगोपशमनविधानम्

याचितारमकिञ्चनं ब्राह्मणं श्रुताध्यापनसम्पन्नमतिशान्तमाहूय यो न प्रयच्छति स जठरशूलरोगवान् भवति कदाचिदाध्मानी भवति सकृच्छ्रातिकृच्छ्राणि कृत्वा वस्त्राणि दद्यात्। दाननिबन्धोक्तं त्रिशूलदानं च कार्यम्। महार्णवे शातातपः—

शूली परोपतापेन जायते वपुषा तनुः। सोऽन्नदानं प्रकुर्वीत तथा रुद्रं जपेद्बुधः॥ इति।

रुद्रविधानं (शिवप्रकरणे) द्रष्टव्यम्।

इति शूलोपशमनम्।

शूलरोग-निदान चिकित्सा—जो व्यक्ति अपने पूर्व जन्म में किसी अकिञ्चन (दीन-हीन गरीब) श्रुत एवं अध्ययन-सम्पन्न ब्राह्मण को, जो कि अत्यन्त शान्त स्वभाव का हो, बुलाकर कुछ नहीं देता है, वह जठरशूल का रोगी इस जन्म में होता है। कभी-कभी उसे अफारा भी लगता है। उसके लिये कृच्छ्र करके वस्त्रदान करना चाहिये। दानप्रकाश ग्रन्थ में बताई विधि से त्रिशूल-दान भी करना चाहिये। शातातप के अनुसार दूसरों को कष्ट देने से इस जन्म में शूल हो जाता है, उसे अन्नदान करना चाहिये तथा रुद्रजप भी करना चाहिये।

गुल्मरोगशमनम्

गुरुप्रत्यर्थी वातगुल्मवान् भवति। तच्छान्तये मासमेकं पयोव्रतं कृत्वा ॐ मुञ्चामीत्यनेन सूक्तेन प्रत्यृचं चरुघृताभ्यां जुहुयात्। ॐ वातआवातुभेषजमित्यस्य वातायन उल ऋषिः। वायुर्देवता। गायत्री छन्दः। विहितार्थे जपे विनियोगः। ॐ

वात आवातु भेषजठं०शम्भूर्मयोभूर्नोहृदेप्रखआयूंॅषितारिषत्॥ १॥ इति मन्त्रेणायुत सङ्ख्यया जपो होमश्च कार्य्यः।

इति गुल्मोपशमनम्।

गुल्म रोग-निदान चिकित्सा—जो अपने गुरु से धन की याचना करता है, उसे वातगुल्म (बायगोला) होता है। उसकी शान्ति के लिये एक मास तक पयोव्रत करके 'ॐ मुञ्चामि०' इस सूक्त से प्रतिऋचा चरु एवं घृत से हवन करना चाहिये। 'ॐ वात आवातु भेषजम्०' इस मन्त्र के वातायन उल ऋषि इत्यादि का विनियोग करके इस मन्त्र का अयुत संख्या (दस हजार) में जप करना चाहिये। मन्त्र मूल पाठ में लिखा है।

उदररोगाणां शमनविधानम्

महार्णवे—

यो ब्रह्मविष्णुरुद्राणां भेदमुत्तमभावतः। कुर्यात्स उरव्याधियुक्तो भवति मानवः॥
कुर्यात्कृच्छ्रं चातिकृच्छ्रं चान्द्रायणमथापरम्। सहस्रकलशस्नानमीश्वरस्य तु कारयेत्॥
जपेदयुतसङ्ख्याकमुद्यन्नद्येत्यृचं तथा। आतेपितरतः सूक्तान् घृतेन चरुणा पृथक्॥
अष्टोत्तरसहस्रं हि जुहुयाच्च ततः परम्। मधुनाज्येन संयुक्तं हिरण्यं शक्तितो दिशेत्॥ इति।

सहस्रकलशस्नानं महेशस्य शतरुद्रेण तत्तु रुद्रप्रकरणे द्रष्टव्यम्। उद्यन्नद्येत्यृचमपि पूर्वं प्रतिपादितमित्यर्थः।

अथ जलोदरे विशेषस्तत्रैव—

सहस्रकलशस्नानं महादेवस्य कारयेत्। भोजयेच्च शतं विप्रान्मुच्यते किल्बिषात्ततः॥

प्लीहोदरे विशेषः—

भृतकाध्यापको यस्तु कन्यादूषणतत्परः। प्लीहवान् स भवेद्विप्रो जपेच्छ्रीसूक्तमन्त्र हि॥
अयुतत्रयसङ्ख्याकं प्लीहोदरविमुक्तये। प्रत्यृचं च भवेद्धोमश्चरुणा सर्पिषा पृथक्॥ इति।

श्रीसूक्तं देवीमन्त्रप्र .णे ज्ञेयम्।

अथ प्लीहरोगनाशकहनुमन्मन्त्रः; मन्त्रमहोदधौ मन्त्रो यथा—'योयोहनूमन्तफलफलितधगधगितआयुराषफूरुडाह' इति चतुर्विंशति २४ वर्णो मन्त्रः।

प्लीहयुक्तोदरे स्थाप्यं नागवल्लीदलं शुभम्। तदुपर्य्यष्टगुणितं वस्त्रमाच्छादयेत्ततः॥
वंशजं शकलं तस्योपरि मुञ्चेत्कपिं स्मरन्। आरण्यप्रस्तरोत्पन्ने वह्नौ यष्टिं प्रतापयेत्॥
बदरीतरुसम्भूतां मन्त्रेणानेन सप्तशः। तया सन्ताडयेद्वंशं शकलं जठरस्थितम्॥
सप्तकृत्वः प्लीहरोगो नश्यत्येव नृणां क्षणात्।

इत्युदररोगशमनप्रकारः।

उदररोग-निदान चिकित्सा—जो ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र में भेद करता है, उसे छाती में पीड़ा होती है। उसे कृच्छ्र, अतिकृच्छ्रचान्द्रायण करना चाहिये। श्री शिवजी को सहस्र कलश से स्नान कराना चाहिये। 'उद्यन्' ऋचा का जप अयुत संख्या में करना चाहिये। उसके अतिरिक्त 'आते पितरतः' सूक्तों का घृत से होम करना चाहिये। उनकी आहुति १०८ हजार देनी चाहिये। फिर मधु-घृत एवं सुवर्ण का दान करना चाहिये। शिवजी को सहस्र कलश स्नान कराने की विधि रुद्रानुष्ठान प्रकरण में देखनी चाहिये।

जलोदर में विशेष—महादेव जी को सहस्रकलश स्नान तथा एक सौ ब्राह्मणों को भोजन कराने से पाप से छूट जाता है।

प्लीहोदर में विशेष—जो वेतन पर अध्यापन कार्य करता है एवं कन्यादूषण में लगा रहता है, उस ब्राह्मण को प्लीहा रोग होता है; उसे श्रीसूक्त का जप करना चाहिये। यह सूक्त अयुक्त संख्या में जपा जाय तो प्लीहोदर से मुक्त हो जाता है। चरु तथा घृत से श्रीसूक्त की प्रत्येक ऋचा से हवन भी करना चाहिये। श्रीसूक्त पीछे देवीमन्त्रानुष्ठान प्रकरण में दिया गया है।

प्लीहा-नाशक हनुमान् मन्त्र—मन्त्र महोदधि के अनुसार 'यो यो हनूमन्तं फलफलितधगधगित आयुराष फूरुडाह' यह चौबीस अक्षरों का मन्त्र है। प्लीहोदर रोग में रोगी की प्लीहा पर पेट पर पान का पत्ता रखकर उसके ऊपर आठ तह का वस्त्र आच्छादित करे। उसके ऊपर बाँस का टुकड़ा हनुमान जी का स्मरण करते हुए छोड़ दे। अब जङ्गली कण्डों की अग्नि में बेर की लकड़ी को तपाकर इस मन्त्र का उच्चारण सात बार करके उसके द्वारा उस वस्त्र पर रखे बाँस के टुकड़े का ताडन करे। सात बार ऐसा करने से प्लीहावृद्धि शान्त हो जाती है।

मूत्रकृच्छ्रादिरोगहरप्रतीकारः

महार्णवे—

सहस्रनामस्तोत्रस्य सूक्तस्य पौरुषस्य च। गायत्र्याश्च जपः कार्य्यः शक्त्या पापापनुत्तये॥

अथ प्रमेहरोगोपशमनविधानम्; महार्णवे—

मातृगामी स्वसृगामी मधुमेही भवेन्नरः। भ्रातृभार्याभिगामी च जलमेही नराधिप॥
यो गच्छेद्भगिनीं नित्यमिक्षुमेहीति निश्चितम्। चाण्डालीगमनात्सर्वप्रमेहव्याधिमान्भवेत् ॥
क्षुत्पिपासातुरश्चैव जायते तस्य निष्कृतिः। चान्द्रायणत्रयं कुर्याद्यवमध्यं तथापरम्॥
तिर्यग्गामी स शूलेन प्रमेहेन युतो भवेत्। कुर्य्यात्सान्तपनादीनि प्रायश्चित्तं यथाविधि॥
पर्वव्यवायी मनुजः कन्यागामी तथैव च। वातप्रमेहयुक्तः स्यात्कुर्याच्चान्द्रायणत्रयम्॥

मूत्रकृच्छ्र-निदान एवं प्रतिकार—श्रीविष्णुसहस्रनाम अथवा पुरुषसूक्त अथवा गायत्री मन्त्र का प्रयोग मूत्रकृच्छ्र (पेशाब की जलन) के प्रतिकार के लिये करना चाहिये।

प्रमेह-रोगोपशमन विधान—मातृगामी, स्वसृगामी व्यक्ति अगले जन्म में मधुमेही होते हैं। इसी प्रकार जो अग्रज अथवा अनुज की पत्नी के साथ मैथुन करता है, उसे अगले जन्म में मधुमेह या प्रमेहनामक रोग उत्पन्न होता है। जो बहिन के साथ मैथुन करता है, वह निश्चित ही इक्षुमेह से पीड़ित होता है। चाण्डाली के साथ गमन करने से अनेक प्रकार के प्रमेह उत्पन्न होते हैं। उसे भूख एवं प्यास से व्याकुलता होती है, उसकी निष्कृति इस प्रकार है—यवमध्य चान्द्रायण करे। जो तिर्यक् योनियों, पशु-पक्षियों के साथ मैथुन करते हैं, वे शूलमेही होते हैं। उन्हें कृच्छ्र सान्तपन व्रत करना चाहिये। जो कन्या के साथ मैथुन करते हैं, पर्वतिथि में मैथुन करते हैं, वे वातप्रमेही होते हैं। उनके लिये तीन चान्द्रायण करना चाहिये।

सर्वप्रमेहशमनप्रकारः

प्रोक्ताधिकं प्रायश्चित्तं प्रकल्प्य मात्रादीनामतिमात्रनिषिद्धत्वात्। यत्राशक्तः तत्र कृच्छ्रत्रयं प्रतिदिनं चत्वारिंशद्-ब्राह्मणभोजनं कारयेत्। पुरुषसूक्तं सहस्रनामस्तोत्रं गायत्रीं वा जपेत्। आतेरौद्रसूक्तेनाज्यहोमं जपं वा अष्टोत्तरसहस्रं कारयेत्। स्वर्णधेनुं च दद्यात्।

सर्वप्रमेह-निदान चिकित्सा—इसके लिये शास्त्र में कठोर प्रायश्चित्त कहा गया है; अतः पीड़ित को यथाशक्ति तीन कृच्छ्र करके प्रतिदिन चालीस ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये तथा पुरुषसूक्त, विष्णुसहस्रनाम

स्तोत्र अथवा गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिये। आतेरौद्र सूक्त से आज्य होम, एक सौ आठ आहुति अथवा जप करना चाहिये एवं स्वर्णधेनु का दान करना चाहिये।

श्वयथुरोगोपशमनम्

महार्णवे—

**पर्वताग्रं नदीतीरं छायामारुह्य वा नरः। मूत्रं पुरीषमथवा यः प्रक्षिपति वा जले॥
श्वयथुव्याधिमाप्नोति इत्याह भगवाञ्छिवः॥**

'स ॐ इदंवोविश्वतःशरीर' इत्यादि अष्टोत्तरशतायुतत्रयं जपेत्। ॐ आपोहिष्ठामयोभुव इत्यनेन चरुघृताभ्यामष्टोत्तरायुतत्रयं होमं कुर्य्यात्।

शोथरोग निदान चिकित्सा—शरीर में जलीय सूजन को शोथ कहते हैं। जो पहाड़ की चोटी पर, नदी के किनारे अथवा वृक्ष की छाया में मूत्र एवं पुरीष का त्याग करता है अथवा इनको जल में फेंकता है, उसे शोथरोग होता है—ऐसा भगवान् शिव का कथन है। उसे 'ॐ इदं वो विश्वतः शरीर०' इत्यादि मन्त्र का तीस हजार एक सौ आठ संख्या में जप तथा 'ॐ आपो हिष्ठा मयो भुव इत्यादि०' मन्त्र से चरु एवं घृत से तीन सहस्र एक सौ आठ होम करना चाहिये।

वृषणव्याधिशमनप्रकारः

तत्र स्नुषागामी वातवृषणः। असकृदज्ञानाद्गत्वा चान्द्रायणत्रयाच्छुध्येत्। ज्ञानात्सकृद्गमने कृच्छ्राद्वा शुद्धिः। बुद्धिपूर्वकं बहुदिनेषु गत्वा अग्निं प्रविश्य मृतः शुध्येत्। स रुद्रसंहितामष्टोत्तरसहस्रं जपेत्। गां च दद्यात्। तथा च महार्णवे विष्णुः—

जायते वृषणे यस्य व्याधिः परमदारुणः। जपित्वा दशसाहस्रं मुच्यते रुद्रसंहिताम्॥

वृषण रोग निदान चिकित्सा—जो अपनी पुत्रवधू के साथ मैथुन करता है, उसे वातवृषण का रोग हो जाता है, जिसमें अण्डकोषों में सूजन एवं पीड़ा होती है। यदि यह कार्य अनजाने में हो तो चान्द्रायण व्रत करके शुद्ध होता है। जानबूझकर केवल एक ही बार हो तो कृच्छ्रचान्द्रायण से शुद्धि होती है। जानबूझकर बहुत समय तक किया जाय तो उसकी शुद्धि तो अग्नि में कूदकर प्राण देने से ही होती है। अथवा वह रुद्रसंहिता का एक हजार आठ जप एवं गोदान करे तब शुद्धि होती है।

गण्डमालाशमनविधानम्

गुरुद्वेषी परचित्तदुःखकारी गुल्मी गण्डमालाव्याधिमांश्च जायते। अस्य प्रायश्चित्तं चान्द्रायणं कृत्वा गण्डमाला-गलगण्डोपशान्तये पुरुषसूक्तं सहस्रमयुतं वा व्याध्यनुसारेण जपेत्।'

गण्डमाला निदान चिकित्सा—गुरुद्वेषी तथा दूसरे को दुःख देने वाला गुल्मरोगी तथा गण्डमाला (विसब्रेलि= Scrafula) से पीड़ित होता है। इसके प्रायश्चित्त-स्वरूप चान्द्रायण व्रत करके पुरुषसूक्त का जप एक सहस्र अथवा एक अयुत (दस सहस्र) करना चाहिये।

कुष्ठरोगोपशमनविधानम्

तत्र जन्तुघातकः कुष्ठरोगी वस्त्रहारी श्वेतकुष्ठी भवति, सान्तपनं कुर्य्यात्। तदुक्तं महार्णवे—

यो नरो हन्ति वै जतून्कुष्ठरोगी भवेत्तु सः। स च सान्तपनं कुर्याद्भगवानाह शङ्करः॥ इति।

अन्यायदण्डकारी च मुखकृष्णो भवति। असौ कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रायणं कुर्य्यात्। क्षुद्रप्राणिहिंसको विवर्णमुखः, स चान्द्रायणमतिकृच्छ्रं च कृत्वा राजतवृषभदानं कुर्य्यात्।

ब्रह्महा नरकस्यान्ते पाण्डुकुष्ठी प्रजायते। प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत यथोक्तमृषिभाषितम्॥

महाभारते—

हिरण्यं रक्तवासांसि पञ्चाशद्विप्रभोजनम्। सहस्रकलशस्नानं तस्य रोगोपशान्तये॥ इति।

अत्र सहस्रकलशस्नानं शालग्रामोपरि कार्यम्। पुरुषसूक्तं सहस्रनामस्तोत्रम्। उद्यन्नद्येत्यृचो जपेत्प्रत्यष्टोत्तरायुतं चरुघृताभ्यां जुहुयात्। अथवा सूर्याराधनम्। आदित्यहृदयजपं महाभारतश्रवणं च कुर्य्यात्।

कुष्ठरोग का कर्मज निदान एवं शमन—पूर्वजन्म में प्राणियों की हत्या करने वाला कुष्ठरोगी होता है। कपड़ों को छीनने वाला श्वेतकुष्ठी होता है। इसके लिये सान्तपन करना चाहिये। महार्णव में भगवान् शङ्कर ने कहा है कि जन्तुघाती कुष्ठरोगी होता है। जो अन्यायपूर्ण दण्ड देता है, वह कृष्णमुख होता है। इन सबको कृच्छ्रचान्द्रायणादि करना चाहिये। छोटे-छोटे प्राणियों की जो हत्या करता है, वह विवर्ण मुख वाला होता है। उसे चान्द्रायण करके वृषभदान करना चाहिये। ब्राह्मण का धन हरण करने वाला नरक भोगने के उपरान्त अगले जन्म में पाण्डुकुष्ठी होता है। उसे ऋषियों द्वारा बताया गया प्रायश्चित्त करना चाहिये। महाभारत में कहा है—स्वर्ण, रक्त वस्त्र का दान तथा पचास ब्राह्मणों का भोजन कराना चाहिये। भगवान् शङ्कर का सहस्रधारा कलश अभिषेक कराना चाहिये। अथवा शालग्राम का सहस्रकलश अभिषेक कराना चाहिये। 'उद्यन्०' इत्यादि ऋचाओं का 'दस हजार आठ' जप तथा चरु एवं घृत से हवन अथवा सूर्य की आराधना करनी चाहिये। आदित्य हृदय का जप अथवा महाभारत का श्रवण करना चाहिये।

विमर्श—श्रीलङ्का में कुष्ठ एवं क्षय रोग के उपचार के लिये रोगी वैद्यों एवं डाक्टरों के पास जाने के स्थान पर उनका धार्मिक उपचारों द्वारा ही उपचार कराना अधिक पसन्द करते हैं। पूर्वकर्म के दोष से ये रोग होते हैं—ऐसा विश्वास सिंहलीजनों में भी है। इस सम्बन्ध में श्रीलङ्का के श्री गननाथ ओबेयेसेकेरे अपने निबन्ध में लिखते हैं—

And this is surely due to my bad karma from a previous birth karma dosha. Illness may be due to naturalistic causes such as an upset humour from spoiled inappropriate or unbalanced foods. It may be caused by supernatural doshas, or by combination of both. And when both natural and supernatural causes are at work both type of curing are in order.—The Impact of Ayurvedic Ideas on the Culture and Individual in Sri Lanka.

इस प्रकार से इन व्याधियों में दैवी उपचार के साथ भेषजोपचार भी करना चाहिये। यह सिद्धान्ततः ठीक भी है; क्योंकि वह व्याधि दोनों कारणों से अर्थात् दोषों तथा कर्मों दोनों से हो सकती है; अतः दोनों प्रकार का उपचार करना युक्तियुक्त ही होता है। इसीलिये श्री गननाथ ओबेयेसेकेरे पुनः अपने उसी निबन्ध में कहते हैं—

Religious specialists may prescribe Ayurvedic medicine along with their magico-religious curing techniques.

शिरोरोगशमनविधानम्

गुरूपरोधी शिरोरोगी भवति। तच्छान्तये पञ्चाशद्ब्राह्मणभोजनं कार्यम्। उद्यन्नद्येत्यृचं जपेत्। कूष्माण्डीभिश्च जुहुयात्। अथवा अक्षीभ्यामिति सूक्तमष्टोत्तरशतं जपेत्। चरुघृताभ्यां दशांशेन जुहुयात्। अथवा वायुपुराणोक्त-स्वर्णयज्ञोपवीतदानं कुर्य्यात्।

शिरोरोगशमन विधान—गुरु का विरोध करने वाला, उन्हें परेशान करने वाला अगले जन्म में असाध्य शिरोरोग से पीड़ित होता है। उसकी शान्तिहेतु पचास ब्राह्मणभोजन करना चाहिये। 'उद्यन्' ऋचा का जप, कूष्माण्ड मन्त्रों से हवन अथवा 'अक्षीभ्यां' सूक्त का एक सौ आठ जप करना चाहिये। चरु एवं घृत से दशांश होम करना चाहिये अथवा वायुपुराण में कथित विधि से स्वर्ण का यज्ञोपवीत दान करना चाहिये।

नेत्ररोगशमनविधानम्

महार्णवे—

परदृष्टिविघातेन भिषग्मिथ्याचरेण च। कामात्परस्त्रियं दृष्ट्वा नेत्ररोगी भवेन्नरः॥
चान्द्रायणपराकं च पञ्चाशद्विप्रभोजनम्। कुर्याद्वयः सुपर्णेति चरुणा सर्पिषा तथा॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु जुहुयाद्रोगशान्तये। वर्चोदाअसि मन्त्रं तु जपेदाज्यं सकाञ्चनम्॥
दद्याद्विप्राय विधिवन्नेत्ररोगः प्रशाम्यति। इति।

कर्मविपाकसङ्ग्रहेऽपि—

नग्नां परस्त्रियं दृष्ट्वा सूर्यं वास्तमयोदये। नेत्रशूली भवेत्सोऽपि नेक्षितुं क्षमते दृशा॥
वर्चोमेदेहि मन्त्रेण होमः स्यादष्ट चायुतम्। वयः सुपर्णा मन्त्रेण नेत्रे सिञ्चेच्च वारिणा॥
अक्षीभ्यान्तः इति जपेन्नेत्रशूलं प्रशाम्यति। इति।

'ॐ वर्चोदा असि वर्चो मे देहि' इति दशाक्षरो मन्त्रः। होमकाले स्वाहान्तः कर्त्तव्यः। अस्य मन्त्रस्य प्राजापत्यपरमेष्ठी-वामदेवा ऋषयः। अग्निर्देवता। अतिशक्वरीछन्दः। विहितार्थे विनियोगः। ॐ वर्चोदाअसिवर्चोमे देहि॥ १॥ ॐ वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधाऋषयोनाधमानाः। अपध्वान्तमूर्णुहिपूर्धिचक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेवबद्धान्॥ २॥ एवं यथाशक्ति यथारोगं च जपसङ्ख्यां प्रकल्प्य यावद्रोगविमुक्तिस्तावन्नेत्रसेचनं कृत्वा यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेत्। सूर्यप्रीत्यर्थं सूर्यपूजा च कार्य्या। नेत्राधिदेवतात्वात्तस्येति। ससुवर्णं साज्यं छायापात्रं दद्यात्। नेत्रपूयहरमपि। तत्रैव—

दम्पतीभ्यां प्रवृत्तं तु मैथुनं यो निरीक्षते। स नेत्रपूययुक्तः स्यादक्षीभ्यामिति मन्त्रतः॥
जपहोमौ च कर्त्तव्यौ शक्त्या ब्राह्मणभोजनम्। सहस्रकलशस्नानं रवेः कुर्याद्द्विजोत्तमः॥ इति।

अत्र सहस्रकलशस्नानं सूर्यप्रतिमायां मण्डले वा ॐ विभ्राडित्यादिसौरसूक्तेन कार्यम्। अथवा सर्वनेत्ररोगोप-शमनार्थमादित्यहृदयं नेत्रोपनिषदं वा सहस्रमयुतं वा पठेत्।

नेत्ररोगशमन विधान—जो पूर्वजन्म में दूसरों की आँख फोड़ता है अथवा बिना वैद्यक पढ़े लोगों की चिकित्सा आँख मींचकर करता है अथवा कामवासना से ग्रस्त होकर दूसरे की स्त्री को देखता है, वह व्यक्ति अगले जन्म में नेत्ररोगी होता है। इसके प्रतीकार के लिये रोगी को चान्द्रायण व्रत करके फिर पचास ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। 'वयः सुपर्ण०' इत्यादि ऋचाओं से घृत एवं पायस का एक सौ आठ आहुति हवन रोगशान्ति के लिये करना चाहिये। अथवा 'वर्चोदा असि०' मन्त्र का जप करके कांसे के कटोरे में घी भरकर उसमें स्वर्ण डालकर विप्र को दान देना चाहिये। इससे विविध नेत्ररोग शान्त होते हैं।

कर्मविपाक संग्रह में भी कहा है कि जो परस्त्री को नग्न देखता है अथवा सूर्य को उदित अथवा अस्त होते हुए देखता है, वह नेत्रशूली होता है तथा वह देखने में समर्थ नहीं होता है। उसे 'वर्चो मे देहि०' इत्यादि मन्त्र से दस सहस्र आठ (१०,००८) की संख्या में होम करना चाहिये। 'वयः सुपर्णा०' इत्यादि मन्त्र से नेत्रों में शीतल जल के छींटे देना चाहिये। 'अक्षीभ्यान्तं' इत्यादि मन्त्र का जप करना चाहिये। इससे नेत्रशूल शान्त होता है।

'ॐ वर्चोदा असि० वर्चो मे देहि' यह दश अक्षरों का मन्त्र है। इससे होम किया जाय तो इसके अन्त में स्वाहा लगाना चाहिये। 'ॐ वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो बाधमानाः। अपध्वान्तमूर्णुहिपूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान् निधयेव बद्धान्॥' यह मन्त्र है। इसका रोग के बलानुसार संख्या में जप करना चाहिये। जब तक रोग दूर न हो तब तक इससे नेत्रों का सेचन करते रहना चाहिये तथा यथाशक्ति संख्या में ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। सूर्य की प्रसन्नता के लिये सूर्यपूजा करनी चाहिये; क्योंकि सूर्य ही नेत्रों के अधिदेवता हैं। सुवर्णसहित, घृतसहित छायापात्र का दान करना चाहिये। यह नेत्र का पूय भी हरण करता है।

जो किसी दम्पति को मैथुन करते हुए देखता है, वह नेत्रपूय (आँखों में पीब आने) का रोगी होता है अथवा उसके नेत्रों में नासूर हो जाता है। उसे 'अक्षीभ्यां०' इत्यादि मन्त्र से जप एवं होम करना चाहिये तथा यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन भी कराना चाहिये।

मन्त्र—ॐ अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छबुकादधि। यक्ष्मं शीर्षण्य मस्तिष्क जिह्वाया विवृहामि ते॥' (ऋग्वेद १०।१६३।१) यह मन्त्र है। इस सूक्त में कुल छः मन्त्र हैं।

सूर्य को सहस्र कलशस्नान कराना चाहिये। यहाँ सहस्र कलशस्नान सूर्यमन्दिर में सूर्य की प्रतिमा पर अथवा सूर्य के बिम्ब में 'ॐ बिभ्राडित्यादि' सौर सूक्त के द्वारा कराना चाहिये। अथवा सर्वनेत्ररोगोपशमनार्थ आदित्यहृदय स्तोत्र अथवा नेत्रोपनिषद् (चाक्षुषोपनिषद) का पाठ एक सहस्र अथवा एक अयुत की संख्या में करना चाहिये।

विमर्श—भारतीय आयुर्वेद के अङ्ग भूतविद्या की भाँति चीन में भी बाह्य शक्तियों के प्रभाव, भूत-प्रेत पिशाच आदि को भी अनेक रोगों में कारणभूत स्वीकार किया गया है। प्राचीन चीनी चिकित्सा ग्रन्थों में इसे 'वाइचिङ्' नामक विद्या कहा गया है; परन्तु अब इस विद्या का वहाँ लोप-सा हो चला है। पाश्चात्य विद्वानों ने चीन की इस विद्या को Mystical Science नाम दिया है; वहाँ इस प्रकार से अनेक रोगों के उपचार में जादू, गण्डे, ताबीज, मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र तथा झाड़-फूँक का प्रयोग होता रहा है तथा विरल प्रमाण में आज भी होता है। चीन के प्राचीन चिन्तकों ने कर्मफल सिद्धान्त को स्वीकार किया है—

I turn now to a religious view of disease which contrasts with a moral conceptions we have dealt with so far. This view involves the anthropomarphism of nature and humanization of natural laws. It deals with problems of morality and it compliments the other systems. In Chinese thought, man's nature is part of a universal order, but culture teach him how to comply this order by preserving inner and outer harmony. If he is aggressive, angry or envious he creats disharmonies in the universe and within himself—Chinese Traditional Etiology.

चीन में भी भूत-प्रेत, यक्ष, राक्षस, गन्धर्वादि के द्वारा मानव शरीर में प्रविष्ट होकर उसे आधि-व्याधिग्रस्त बना देने की बात मान्य है। उनके अनुसार धर्म का सम्बन्ध मनुष्य के अनैतिक क्रिया-कलापों से है। प्रथम प्रकार में पाँच प्रकार के अमानुष, जिन्हें चीनी भाषा में 'ङ्ग-क्वाई' कहा जाता है, मनुष्य से असामान्य व्यवहार करवाते हैं। वे अमानुष उसके कार्य-व्यवहार एवं विचारों में परिवर्तन कर देते हैं, जिसके कारण मनुष्य का शरीर रोगों का घर बन जाता है तथा दुर्भाग्य उसे घेर लेता है। इनका व्यवहार बाघ, बाज, शूकर तथा सर्प की भाँति हो जाता है। अभिचार कर्म में इन अमानुषों का प्रयोग होता है—

Discussion with ritual experts indicates that certain entities in popular religion may be relate to man's immoral actions in two ways. Five demons (ng̃-kwai) are portrayed as non civilized men (wear-

ing lion cloths) on commonly used charm-papers. This kind of demon may be seen as a metaphorical counter-part of man acting in an uncivilized, i.e. disturbing manner, the five as a group being a metonymy for all kinds of disturbing activity. On the other hand, the demon itself may be thought of as activated or conjured up by disturbing human activity and itself an independent agent of disease and misfortune. On the charms are also portryed a tiger, eagle, wild pig and snake. They are termed 'improper' (ts'e). Again they are mataphorical counter-parts, this time of disturbed forces of nature and as a group a metonymy for all such disturbed forces. At the same time they are also mal-elvalent entities activated by these forces, and have an independent role. But Gods defend men from them. The white Tiger, Cock and Dog (the tiger in this context has been tamed by a Taoist immortal) quell the demons, and the killing of improper creatures. Other Gods symbolizing culture and its values are dressed as officials. They do for man as a part of nature. What literal officials do for him as a member of society.

यह तो हुआ चीन के ताओ सम्प्रदाय एवं उनके पूर्ववर्ती आचार्यों के अनुसार उपस्थित किया गया सिद्धान्त; परन्तु भारत से गये हुए बौद्धधर्म के विचार तथा चीन की प्राचीन विचारधारा में मनुष्य के साथ प्रकृति के सन्तुलन-सम्बन्धी चिन्तन में एक स्पष्ट पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है। इसे भी समझ लेना जिज्ञासुओं के लिये आवश्यक है। प्राचीन बौद्धों के अनुसार मनुष्य प्राकृतिक व्यवस्था एवं लयबद्धता का एक अंश है, जो कि नैतिक नियमों द्वारा शासित है। जब वह इस प्राकृतिक विधान के अनुसार आचरण करता है, नैतिक नियमों का पालन करता है तो वह इस जीवन में सौभाग्य को प्राप्त होकर मृत्यु के उपरान्त भी सद्गति को प्राप्त होता है; परन्तु इसके विपरीत जब वह प्रकृतिविरुद्ध तथा नैतिकता-विरुद्ध आचरण करता है अर्थात् मनमानी करता है तो वह पुनः जन्म लेता है। जो महत्त्वपूर्ण अन्तर चीनी तथा बौद्ध विचारधारा में है, वह यह है कि बुद्ध के विचार के अनुसार प्राकृतिक विधान अनेक बार सामाजिक रीति-रिवाजों के विपरीत पड़ जाता है। जैसे कि धार्मिक रीति-रिवाजों के लिये एक सूअर की बलि देना। उदाहरण के लिये यह कार्य चीन के रीति-रिवाज के अनुसार आवश्यक है; जैसे कि वे लोग अपने पितरों की सन्तुष्टि के लिये यह सब करते हैं; परन्तु बौद्ध विचारधारा से यह प्रकृति के नियम के विरुद्ध है (आज पर्यावरण प्रदूषण एवं अनेक वन्य जन्तुओं की प्रजातियों के पूर्णतः लुप्त होने का एक बड़ा कारण इस प्रकार की रीतियाँ भी हैं, जो धर्म के नाम पर चलती हैं); जैसा कि मार्जोरीटॉपले अपने निबन्ध में लिखते हैं—

Buddhism introduced to China another conception of man and nature different from the cosmic theory we have discussed so far. According to formal Buddhism, man is part of a natural order governed by moral law. If he complies with this law, he works out his fate in this life and dies a completed individual. If he acts un naturally, he activates principles inherent in the law of nature (karma) which cause him to be reborn. One important difference between the Buddhist and Chinese cosmic view is that—in Buddhism natural law may sometimes be in opposition to the customs, and law of society. It is unnatural to kill pigs for ritual purposes for example, although it may be demanded by Chinese custom (e.g. ancestral rites). A Chinese veiw, and one certainly accepted by the politically dominant Confucian philosophy, is that culture and nature can never be in opposition, since one is the morally correct method for approaching and under standing the other. The conflict of nature and culture is resolved to some extent in popular Buddhism by introducing sins against society and culture as additional causes for rebirth (cf. Eberhard 1967). .... Chinese Traditional Etiology.

इतना ही नहीं, चीन में भी विवाह के पूर्व, व्यापार में साझीदारी आदि करने के पूर्व दोनों व्यक्तियों की जन्मपत्रियाँ मिलाने की प्रथा है। पञ्चाङ्ग देखकर शुभ समय में कार्य आरम्भ करने की प्रथा है तथा दुष्ट प्रसूति में माता-पिता के लिये अशुभ ग्रहों के प्रभाव से बचने के लिये उनमें जन्मे बालक-बालिकाओं को माता-पिता से दूर करने की प्रथा भी है।

नेत्रोपनिषत्

अथातश्चाक्षुषीं पठितसिद्धविद्यां चक्षुरोगहरां व्याख्यास्यामो यथा चक्षुरोगाः सर्वतो नश्यन्ति चक्षुषो दीप्तिर्भवति। अस्याश्चाक्षुषविद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिः। गायत्री छन्दः। सविता देवता। चक्षुरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः। ॐ चक्षुश्चक्षुश्चक्षुस्तेजः। स्थिरो भव मां पाहि त्वरितं चक्षूरोगान् शमयशमय मम जातरूपं तेजो दर्शयदर्शय यथाहमन्धो न स्यां तथा कृपया कल्याणं कुरुकुरु मम यानियानि पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुःप्रतिरोधकदुष्कृतानि तानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय। ॐ नमश्चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्यभास्कराय ॐ नमः करुणाकराय अमृताय। ॐ नमो भगवते सूर्याय। अक्षितेजसे नमः। खेचराय नमः। महते नमः। रजसे नमः। तमसे नमः। असतो मां सद्गमय। तमसो मां ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय। उष्णो भगवान् शुचिरूपः हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः। य इमां चाक्षुष्मतीं विद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते। न तस्याक्षिरोगो भवति न तस्य कुलेन्धो भवति। अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा विद्यासिद्धिर्भवति। ॐ विश्वरूपं घृणितंजातवेदसं हिरण्मयं ज्योतिरूपं ज्योतिरूपं तपन्तं सहस्त्ररश्मिभिः शतधा वर्तमानः। पुरः प्रजातामुदयत्येषसूर्यः ॐ नमो भगवते आदित्याय अवाग्वादिने स्वाहा। इति नेत्रोपनिषत्समाप्तिः।

यह नेत्रोपनिषत् है, इसे ही चक्षुषोपनिषत् तथा चाक्षुषी विद्या कहते हैं। इसका नित्यप्रति पाठ करने से तथा सूर्य की पूजा करने से उस व्यक्ति के नेत्रों में कभी रोग नहीं होता है, उसकी जीवन-पर्यन्त नेत्रदृष्टि ठीक बनी रहती है। उसके कुल में कोई व्यक्ति अन्धा नहीं होता है। इसके पाठ की समाप्ति होने पर गन्ध-पुष्पादि से युक्त जल के द्वारा सूर्य को नमस्कार अवश्य करना चाहिये। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन भोजन के उपरान्त दोनों समय हाथ धोने के उपरान्त गीले हाथों से अपने नेत्रों का स्पर्श करना चाहिये, इससे नेत्रों को शक्ति मिलती है। आज के समय में कम्प्यूटर तथा दूरदर्शन का प्रयोग बढ़ रहा है; इनसे नेत्रसुरक्षा चाहने वाले को दूरदर्शन का उपयोग न्यूनतम करना चाहिये तथा कम्प्यूटर एवं अन्तरताने (इण्टरनेट) के उपभोक्ताओं को इस क्रिया को अवश्य करना चाहिये।

गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित नित्यकर्मपूजा प्रकाश में चक्षुषोपनिषत् का पाठ कुछ भिन्न है; अतः उसे भी यहाँ दिया जा रहा है—

चाक्षुषोपनिषद् (चाक्षुषी विद्या)

विनियोग—ॐ अस्याश्चाक्षुषीविद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिर्गायत्री छन्दः सूर्योदेवता चक्षुरोगनिवृत्तये विनियोगः।

ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव। मां पाहि पाहि। त्वरितं चक्षुरोगान् शमय शमय। मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय। यथाहं अन्धो न स्याम् तथा कल्पय कल्पय। कल्याणं कुरु कुरु। यानि मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुःप्रतिरोधकदुष्कृतानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय।

ॐ नमः चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्याय भास्कराय। ॐ नमः करुणाकरायामृताय। ॐ नमः सूर्याय। ॐ नमो भगवते सूर्यायाक्षितेजसे नमः। खेचराय नमः। महते नमः। रजसे नमः। तमसे नमः। असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय। उष्णो भगवान् शुचिरूपः। हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः।

य इमां चाक्षुष्मतीविद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति। न तस्य कुले अन्धो भवति। अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग् ग्राहयित्वा विद्यासिद्धिर्भवति ॐ नमो भगवते आदित्याय अहोवाहिनी अहोवाहिनी स्वाहा॥

॥ श्रीकृष्णयजुर्वेदीया चाक्षुषीविद्या सम्पूर्णा॥

नेत्ररोगहरं तर्पणम्

महार्णवे—उद्यन्नद्येति त्र्यृचस्य कण्वः प्रस्कण्व ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। सूर्यो देवता। तर्पणे विनियोगः। ॐ उ॒द्यन्न॒द्यमि॑त्रमहः॥ ॐ सूर्यं तर्पयामि॥१॥ ॐ आ॒रो॒हन्नु॒त्त॑रा॒न्दिव॑म् ॐ सूर्यं तर्पयामि॥२॥ ॐ हृ॒द्रो॒गंमम॑सूर्य॑ ॐ सूर्यं तर्पयामि॥३॥ ॐ हरि॒माणं॑ च नाशय ॐ सूर्यं तर्पयामि॥४॥ ॐ शुकेँषुमेहरि॒माण॑म् ॐ सूर्यं तर्पयामि॥५॥ ॐ रोप॒णाका॑सुदध्मसि ॐ सूर्यं तर्पयामि॥६॥ ॐ अथौहारिद्र॒वेषु॑मे ॐ सूर्यं तर्पयामि॥७॥ ॐ हरि॒माणं॒ निद॑ध्मसि ॐ सूर्यं तर्पयामि॥८॥ ॐ उद॑गादु॒यमा॑दि॒त्यः ॐ सूर्यं तर्पयामि॥९॥ ॐ विश्वे॑न॒सह॑सा॒सुह ॐ सूर्यं तर्पयामि॥१०॥ ॐ द्वि॒षन्तं॒मह्यं॑र॒न्धय॒न् ॐ सूर्यं तर्पयामि॥११॥ ॐ मोअहंद्वि॑षु॒तेर॑धम् ॐ सूर्यं तर्पयामि॥१२॥

अथार्धर्चः—ॐ उ॒द्यन्न॒द्यमि॑त्रमहआ॒रो॒हन्नु॒त्त॑रां॒दिव॑म् ॐ सूर्यं तर्पयामि॥१॥ ॐ हृ॒द्रो॒गंमम॑सूर्यहरि॒मा॑णञ्च नाशय ॐ सूर्यं तर्पयामि॥२॥ ॐ शुकेँषुमेहरि॒माणं॑रोप॒णाका॑सुदध्मसि ॐ सूर्यं तर्पयामि॥३॥ ॐ अथौहारिद्र॒वेषु॑मे हरि॒माणं॒निद॑ध्मसि ॐ सूर्यं तर्पयामि॥४॥ ॐ उद॑गादु॒यमा॑दि॒त्योविश्वे॑न॒ सहसा॑सुह ॐ सूर्यं तर्पयामि॥५॥ ॐ द्वि॒षन्तं॒मह्यं॑र॒न्धय॒न्मोअहंद्वि॑षु॒तेर॑धम् ॐ सूर्यं तर्पयामि॥६।

अथ सर्वर्चः—ॐ उ॒द्यन्न॒द्यमि॑त्रमहआ॒रो॒हन्नु॒त्त॑रां॒दिव॑म्। हृ॒द्रो॒गंमम॑सूर्यहरि॒मा॑णञ्चनाशय ॐ सूर्यं तर्पयामि॥१॥ ॐ शुकेँषुमेहरि॒माणं॑रोप॒णाका॑सुदध्मसि॥ अथौहारिद्र॒वेषु॑मेहरि॒माणु॒न्निद॑ध्मसि। ॐ सूर्यं तर्पयामि॥२॥ ॐ उद॑गादु॒यमा-दि॒त्योविश्वे॑नसह॑सा॒सह। द्वि॒षन्त॒म्मह्य॒र॒न्धय॒न्मोअ॒हंद्वि॑षते॒र॑धम् ॐ सूर्यं तर्पयामि॥३॥

अथ सार्द्धर्चशः—ॐ उ॒द्यन्न॒द्यमि॑त्रमहआ॒रो॒हन्नु॒त्त॑रां॒दिव॑म्। हृ॒द्रो॒गंमम॑सूर्यहरि॒माणं॑चनाशय॥१॥ शुकेँषुमे हरि॒माणं॑रोप॒णाका॑सुदध्मसि ॐ सूर्यं तर्पयामि॥१॥ ॐ अथौहारिद्र॒वेषु॑मेहरि॒माणं॒निद॑ध्मसि॥२॥ ॐ उद॑गादु॒यमा॑ दि॒त्योविश्वे॑नसह॑सा॒सुह। द्वि॒षन्तं॒मह्यं॑र॒न्धय॒न्मोअ॒हंद्वि॑षते॒र॑धम्॥३॥ ॐ सूर्यं तर्पयामि॥

अथ त्र्यृचेन त्रिः—ॐ उ॒द्यन्न॒द्य० १ ॐ शुकेँषु० २ ॐ उदगादु॒य० ३ ॐ सूर्यं तर्पयामि १ एवं त्र्यर्चेन पुनरपि द्विः। अस्य सकलस्यापि तर्पणप्रयोगस्य व्याध्यनुसारेणाष्टाविंशतिरष्टोत्तरशतमित्याद्यावृत्तिः कल्पनीया। तत्र तर्पणे रक्ताक्षतरक्तपुष्पाणि ग्राह्याणि अयं च तर्पणप्रकारो न केवलनेत्ररोगहरः; अपि तु ज्वरादिरोगहरोऽपि ज्ञेयः। तथा च सायनभाष्ये शौनकः—

उद्यन्नद्येति मन्त्रोऽयं सौरः पापप्रणाशनः। रोगघ्नश्च विषघ्नश्च भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥

इति नेत्रादिरोगहरतर्पणम्।

मूल में लिखे विनियोग मन्त्र को पढ़कर जल छोड़कर इस तर्पणकर्म के लिये 'ॐ उद्यान्नद्यमित्रमहः ॐ सूर्यं तर्पयामि' इत्यादि मूल में लिखे बारह मन्त्रों से नेत्रों का तथा सूर्य का भी तर्पण करना चाहिये। फिर आगे लिखी आधी-आधी ऋचाओं वाले छः मन्त्रों से तर्पण करना चाहिये। तदुपरान्त इस सम्पूर्ण ऋचा से तथा 'ॐ शुक्रेषुमेहरिमाणं०' इत्यादि दूसरी पूर्ण ऋचा से तर्पण करना चाहिये। फिर 'ॐ उदगादय०' इत्यादि तीसरी मूल में लिखित सम्पूर्ण ऋचा से तीसरी बार तर्पण करना चाहिये। तदुपरान्त डेढ़-डेढ़ ऋचाओं के तीन मन्त्रों से तीन बार तर्पण करने के बाद पूरी तीन ऋचाएँ एक साथ बोलकर तीन बार तर्पण करना चाहिये। सबसे अन्त में तीनों ऋचाओं से दो तर्पण करना चाहिये।

इस सम्पूर्ण तर्पण-प्रयोग की व्याधि के अनुसार अट्ठाईस अथवा एक सौ आठ आवृत्तियाँ करनी चाहिये। इस तर्पण में लाल चावल, लाल फूल ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार से तर्पण करने पर केवल नेत्ररोगों में ही लाभ नहीं होता; अपितु ज्वरादि अन्य रोगों का भी नाश होता है। जैसा कि सायनभाष्य में श्री शौनक जी ने कहा है—'उद्यन्न०' इत्यादि मन्त्र सौरमन्त्र है, जो कि पापनाशक है। यह रोगनाशक, विषनाशक तथा भुक्ति-मुक्ति का फल देने वाला है।

कर्णरोगोपशमनम्

महार्णवे—

मातृपितृगुरूणां च देवब्राह्मणयोस्तथा। शृणोति निन्दां बुद्ध्या यः कर्णाभ्यां तस्य शोणितम्॥
पूयं च प्रस्रवत्यस्य शान्तिः कृच्छ्रचतुष्टयात्। हिरण्यरक्तवस्त्राणां दानाद्ब्राह्मणभोजनात्॥
जपाद्धोमाच्च भवति सौरमन्त्रेण शक्तितः॥ इति।

अत्र जपे होमश्च ॐ उद्यन्नद्येतिसौरमन्त्रेणाष्टोत्तरशतादिः कार्यः। सौरमन्त्रस्तु नेत्ररोगे पूर्वं कथितः।

कर्णरोग-निदान एवं प्रतिकार—जो मन लगाकर माता-पिता देवता ब्राह्मण एवं गुरुजनों की निन्दा सुनता हो, अगले जन्म में उसके कानों से रक्तस्राव तथा पूयस्राव होता है। उसे चार कृच्छ्रचान्द्रायणों या केवल कृच्छ्र का व्रत करके स्वर्ण तथा रक्तवस्त्रों का दान एवं ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये तथा शक्ति के अनुसार सौरमन्त्र का जप एवं उसी से हवन भी करना चाहिये। 'ॐ उद्यन्नद्य०' यह सौर मन्त्र है, जो पीछे नेत्ररोगोपशमन में दिया जा चुका है।

नासिकारोगहरविधानम्

महार्णवे—

लवणस्यापहर्ता तु शीर्णघ्राणांघ्रिपाणिकः। घर्घरस्वरवांश्चैव जायते तस्य निष्कृतिः॥
उद्यन्नद्यत्र्यृचं सम्यक् जपेदष्टोत्तरायुतम्। जुहुयाच्चरुसर्पिर्भ्यां रक्तवासांसि काञ्चनम्॥
दद्यादेवं द्विजगवां कुर्य्यात्पूजां स्वशक्तितः।

नासिकारोगों का निदान एवं प्रतिकार—जो नमक की चोरी करता है, उसके हाथ-पैर गल जाल जाते हैं तथा नाक में पीनस हो जाती है। उसका स्वर घर्घर होता है। इसके प्रतिकार-हेतु दस हजार आठ की संख्या में 'उद्यन्नद्य०' इत्यादि तीन ऋचाओं का जप तथा उसका दशांश खीर तथा घृत से हवन करना चाहिये। लाल वस्त्र, स्वर्ण तथा गोदान करना चाहिये। गोपूजन तथा ब्राह्मणपूजन करना चाहिये।

मुखरोगोपशमनविधानम्

अथ मुखरोगहराणि महार्णवे—

कूटसाक्षी भवेद्वक्त्ररोगी शोणितपित्तवान्। कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत चान्द्रायणमथापरम्॥
कुर्यात्कूष्माण्डहोमं च गायत्रीमयुतं जपेत्। दद्याद्धिरण्यं व्रीहींश्च मुखरोगस्य शान्तये॥
इति मुखरोगोपशमनविधानं समाप्तम्।

मुखरोग-निदान एवं प्रतिकार—झूठी गवाही देने वाला मुखरोगी तथा रक्तपित्तरोगी (अगले जन्म में) होता है। इसके प्रतिकार-हेतु कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, चान्द्रायणादि व्रत, कूष्माण्ड होम तथा अयुत गायत्री जप करना चाहिये। हिरण्य तथा चावल एवं जौ का दान करना चाहिये। इससे कर्मज व्याधि शान्त (मुखरोग) हो जाती है।

अपस्मार(मृगी)रोगोपशमनविधानम्

महार्णवे—

गुरौ स्वामिनि वा यस्तु प्रतिकूलं समाचरेत्। सोऽपस्मारी भवेत्तत्र कुर्याच्चान्द्रायणं व्रतम्॥
सदसस्पतिमन्त्रेण चर्वाज्यं जुहुयात्तथा। कयान इति सूक्तं तु जपेद्ब्राह्मणतर्पणम्॥
कुर्याद्धिरण्यदानं च शक्त्या रोगस्य शान्तये॥

सदसस्पतिमिति मन्त्रस्य मेधातिथिर्ऋषिः। गायत्रीछन्दः। सदसस्पतिर्देवता। होमे विनियोगः। ॐ सदसस्पतिमद्भुतम्प्रियमिन्द्रस्यकाम्यं सनिं मेधामयासिषम्॥ १॥ कयान इति सूक्तं पञ्चदशर्चात्मकं ऋग्वेदीयं ज्ञातव्यम्। शातातपः—

धूर्त्तोपस्माररोगी स्यात्तत्तद्दोषोपशान्तये। ब्रह्मकूर्चत्रयं कृत्वा धेनुं दद्यात्सदक्षिणाम्॥

अथवा दाननिबन्धोक्तं गणपतिप्रतिमादानं कुर्यात्। इत्यपस्मारशमनम्।

अपस्मार निदान एवं प्रतिकार—जो अपने गुरु तथा स्वामी के साथ प्रतिकूल बर्त्ताव करता है, वह अपस्मारी (मिरगी के दौरे पड़ने वाला) होता है। उसे चान्द्रायण व्रत करना चाहिये। उस सदसस्पति मन्त्र—'ॐ ॐ सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषं स्वाहा॥' से चरु एवं आज्य से हवन करना चाहिये। 'कयान' इत्यादि सूक्त का जप करना चाहिये तथा ब्राह्मणों को तृप्त करना चाहिये। यथाशक्ति सुवर्णदान भी रोगशान्ति के लिये करना चाहिये। सदसस्पति मन्त्र का विनियोग इस प्रकार है—'ॐ अस्य सदसस्पतिमन्त्रस्य मेधातिथिर्ऋषिः। गायत्री छन्दः। सदसस्पतिर्देवता, होमे विनियोगः।' 'कयान०' सूक्त ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल का इकतीसवाँ सूक्त है, जिसमें कुल पन्द्रह मन्त्र हैं, उनका जप करना चाहिये।

शातातप के अनुसार जो धूर्त्त होता है, वह अगले जन्म में अपस्माररोगी होता है। उसके दोष की शान्ति के लिये तीन ब्रह्मकूर्च व्रतों का पालन करने के उपरान्त दक्षिणा-सहित गोदान करना चाहिये। अथवा दाननिबन्ध में कथित (दानप्रकाश ग्रन्थ में वर्णित) विधि से श्री गणेश जी की मूर्ति का दान करना चाहिये (यह दानप्रकाश ग्रन्थ स्वयं इस ग्रन्थ=अनुष्ठानप्रकाश के रचयिता पं० चतुर्थीलाल द्वारा प्रणीत है; उसी को दाननिबन्ध लिखा है। चतुर्थीलाल जी का यह अनुष्ठानप्रकाश छठा निबन्ध है)।

भगन्दररोगोपशमनम्

महार्णवे—

यो गृहीत्वा द्विजो मोहान्नियुक्तो धर्म्मनिश्चये। भगन्दरो भवेत्तस्य ह्यधर्म्मं वदतो मुखात्॥

पद्मपुराणे विशेषः—आचार्यभार्यागमने भगन्दरयुतो भवेत्। शातातपोऽपि—

स्वगोत्रस्त्रीप्रसङ्गेन जायते च भगन्दरी। तेनापि निष्कृतिः कार्या मेषदानेन यत्नतः॥

अत्र मेषदानं दानग्रन्थोक्तं रजतमयमेषदानं बोध्यम्। इति भगन्दरोपशमनम्।

भगन्दर रोग की शान्ति—जो ब्राह्मण को जबरदस्ती पकड़कर धर्मकार्य में लगाता है अथवा जो ब्राह्मण धन लेकर धर्म का निश्चय (धार्मिक निर्णय) करता है तथा उसके स्थल पर अधर्म करता है, उसको भगन्दर रोग होता है। पद्मपुराण में कहा है—आचार्य की भार्या से गमन करने वाला भगन्दरयुक्त होता है। शातातप ने भी कहा है—अपने गोत्र स्त्री से मैथुन करने से भगन्दरयुक्त होता है। उसका उपाय मेषदान के रूप में करना चाहिये। चाँदी का बकरा बनाकर दान करना चाहिये।

हृदयादिव्रणरोगोपशमनम्

शातातपस्मृतौ—

स्वजातिजायागमने जायते हृदयव्रणी। तत्पातकविशुध्यर्थं प्राजापत्यव्रतं चरेत्॥
जात्युत्तमस्त्रीगमनाज्जायते मस्तकव्रणी। तत्पातकविशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यव्रतं चरेत्॥
श्रोत्रियस्त्रीप्रसङ्गेन जायते नासिकाव्रणी। आचरेत् सर्वशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यचतुष्टयम्॥

महार्णवे—

जलाग्न्युद्बन्धनप्रायनिमित्तेन म्रियेत यः। भवेदुरसि दुष्टं हि व्रणं तस्यापि निष्कृतिः॥
स दद्याद्गोद्वयं सम्यक्पञ्चाशद्विप्रभोजनम्। दक्षिणां च यथाशक्ति मुक्तो भवति रोगतः॥

भगव्रणे विशेषः—

मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्यविघातिनी। सा भवेद्व्रणदोषेण सम्भोक्तुं क्षमते न च॥
सम्भोगानन्तरं तीव्रवेदना पुरुषस्य वा। स नीलवृषभान्दद्यान्मधुसर्पिस्तिलानपि॥

स्तनस्फोटेऽपि विशेषः—

अवमन्य तु भर्तारं जारमालिङ्गते नवम्। सार्द्धं क्रीडति या नारी तमेवानुस्मरत्यपि॥
तस्यास्तु स्तनयोः स्फोटा जायन्ते जनमान्तरे। भगाच्च रक्तं स्त्रवति तद्रोगस्य प्रशान्तये॥
दद्याद्गाः पञ्च लवणं हरिद्रा धान्यमेव च। उमामहेश्वरं चैव पूजयेच्च धने सति॥

निष्कद्वादशकं दद्याज्जपेत्तामग्निसूक्तम्। [तामग्निसूक्तं तामग्निवर्णां तपसा इत्यादि सप्तर्चसूक्तं ऋग्वेदे प्रसिद्धम्] इति व्रणशमनम्।

हृदयादि मर्मस्थानों के फोड़े एवं घाव—हृदय-वक्ष-आन्त्र आदि में उत्पन्न होने वाले गम्भीर आन्तरिक व्रणों को ही यहाँ हृदयादि व्रण कहा गया है। शातातप स्मृति में कहा है—(१) अपनी जाति की परस्त्री के साथ मैथुन करने वाले व्यक्ति को अगले जन्म में हृदय में व्रण होता है, उसके पातक की विशुद्धि-हेतु प्राजापत्य व्रत करना चाहिये। (२) अपनी जाति से ऊँची जाति की स्त्री से गमन करने पर मस्तकव्रण (दिमागी फोड़ा) होता है, उसकी शुद्धि के लिये भी प्राजापत्य व्रत करना चाहिये। (३) वेदपाठी ब्राह्मण की स्त्री से मैथुन करने के कारण अगले जन्म में नासिकाव्रण होता है; उसकी शान्ति-हेतु चार प्राजापत्य व्रत करना चाहिये।

महार्णव ग्रन्थ के अनुसार—जिसकी मृत्यु जल, अग्नि अथवा उद्बन्धन (फाँसी पर लटकने) से होती है, उसकी छाती में फोड़ा होता है। उसकी निष्कृति इस प्रकार है—उसे दो गोदान सम्यक् रीति से (गायों को स्वर्णमण्डित करके) देना चाहिये तथा पचास ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। ऐसा करने से उसे दुर्मृत्यु के पाप से छुटकारा मिल जाता है।

भगव्रण में विशेष—जो स्त्री पति के मरने पर ब्रह्मचर्य का विघात करती है, अगले जन्म में उसकी योनि में व्रण हो जाता है, जिससे वह सम्भोग करने में अक्षम होती है। उसे सम्भोग के उपरान्त तीव्र वेदना होती है। उसे नील वृष, मधु-घृत तथा तिल का दान करना चाहिये।

स्तन-स्फोट में विशेष—जो अपने पति की अवमानना कर अन्य जार पुरुष का आलिङ्गन करती है तथा उसके साथ रतिक्रीड़ा करती है, उसी का चिन्तन करती है तो अगले जन्म में उसके स्तनों में फोड़े होते हैं तथा योनि से रक्तस्राव होता है। उस रोग की शान्ति के लिये पाँच गायों, लवण, हरिद्रा, धान्य आदि का दान करना

चाहिये तथा उमा-महेश्वर की पूजा करके यदि सम्भव हो तो बारह निष्क स्वर्णदान भी करना चाहिये। साथ ही अग्निसूत्र का जप करना चाहिये। (अग्निसूक्त ऋग्वेद में प्रसिद्ध है)।

वातरक्तशमनम्

वृद्धबौधायनः—

सवर्णागमने रक्तवातवाञ्जायते नरः। एतद्रोगनिवृत्यर्थं षडब्दं कृच्छ्रमाचरेत्॥

शातातपोऽपि—

रक्तवस्त्रप्रवालानां हारी स्याद्रक्तवातवान्। सवस्त्रां महिषीं दद्यात्पद्मरागसमन्विताम्॥

वस्त्रं रक्तमेव। इति वातरक्तोपशमनम्।

वातरक्त निदानोपचार—जो पुरुष अपने वर्ण की परस्त्री से मैथुन करता है, उसे रक्तवात उत्पन्न होता है। इस रोग की निवृत्ति-हेतु छः वर्ष तक कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। शातातप में भी कहा है—लाल वस्त्र, प्रवाल इत्यादि की चोरी करने वाले को रक्तवात होता है; उसे वस्त्रों के साथ ही भैंस एवं पन्ना का दान करना चाहिये (वस्त्र रक्त वर्ण होना चाहिये)। वातरक्त को गठिया कहा जाता है।

स्त्रीप्रदररोगोपशमनविधानम्

अथ स्त्रीणां प्रदररोगस्योपायः महार्णवे—

स्रवद्गर्भा भवेत्सा तु बालकं हन्ति या पुरा।

एतद्दोषविनाशार्थं वायुपुराणोक्तं काञ्चनयज्ञोपवीतं यथाविधि दद्यात्।

गर्भस्रावभवाद्दोषादेवं कृत्वा विमुच्यते।

पूर्वजन्मनि या पित्रा मात्रा गुरुणा वा सार्द्धं स्पर्धते सा प्रदररोगिणी भवति, सा कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्य्याच्चान्द्रायणानि च कुर्यात्। तद्विष्णोरिति मन्त्रमयुतत्रयं जपेत्। आज्यसहितमधुमण्डकान्नं दद्यात्। विप्रपादक्षालितोदकेन स्वाङ्गं मार्जयेत्। विप्रोच्छिष्ठेनानुलिम्पेत्। या इत्थमाचरति तस्या अवश्यं चिकित्सायां रोगो नश्यति। इति प्रदररोगहरो विधिः।

स्त्रियों के प्रदररोग का निदान एवं प्रतिकार—महार्णव में कहा है कि जो अपने पूर्वजन्म में बालकों की हत्या करती है, वह अगले जन्म में प्रदर रोग से पीड़ित होती है। उसके उपचार-हेतु वायुपुराण में कथित स्वर्णनिर्मित यज्ञोपवीत दान करना चाहिये। ऐसा करने से गर्भपात कराने के दोष से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। जो पूर्वजन्म में अपने माता-पिता से स्पर्धा करती है, वह प्रदररोगिणी होती है। उसे कृच्छ्र तथा अतिकृच्छ्र करके चान्द्रायण करना चाहिये। 'ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥' इस मन्त्र का अयुतत्रय (तीस हजार) जप करना चाहिये तथा जप के उपरान्त आज्यसहित मधु, मण्डकान्न (मांड का अन्न) दान करना चाहिये। ब्राह्मण के पैरों के धोने का जो जल थाली में हो, उससे रोगिणी को अपने शरीर का मार्जन करना चाहिये एवं विप्र के उच्छिष्ट का अपने शरीर में लेपन करना चाहिये। जो इस प्रकार का आचरण करती है, उसका रोग फिर औषधोपचार करने पर अवश्य ही नष्ट हो जाता है।

गर्भरक्षाविधानम्

अथ गर्भिण्याः प्रतिमासं गर्भरक्षाप्रकारः वीरसिंहावलोकने—

प्रथमे मासि—गर्भिण्या गर्भरक्षामुद्दिश्य ब्रह्मणे बलिं दद्यात्। पायसघृतश्वेतवस्त्रचन्दनच्छत्राङ्गुलीयककवचरत्नगर्भ-गन्धपुष्पधूपदीपहिरण्यसहितपूर्णकुम्भेन बलिं क्षिपेत्। बलिमन्त्रः—

एह्येहि भगवन् ब्रह्मन् प्रजाकर्त्तः प्रजापते। प्रगृह्णीष्व बलिं चेमं चापत्यां रक्ष गर्भिणीम्॥

इति मन्त्रेण शुद्धात्मना बलिर्देयः बलिदात्रे दक्षिणां च दद्यातिति प्रथममासबलिदानविधानम्॥ १ ॥ एवमेव सर्वत्र।

द्वितीये मासि—पायसदध्यन्नलाजतिलपिण्याकवस्त्रहिरण्यजलपूर्णकुम्भादिभिरलङ्कृत्य—

ॐ अश्विनौ देवदेवेशौ प्रगृह्णीतं बलिं त्विमम्। सापत्यां गर्भिणीं चेमां रक्षत पूजयानया॥

इति मन्त्रेणाश्विभ्यां बलिं दद्यात्। इति द्वितीयमासबलिः ॥ २ ॥

तृतीये मासि—क्षीरान्नलाजश्वेतध्वजहिरण्यवस्त्रगन्धादिभिर्बलिं सम्पाद्य—

ॐ रुद्राश्चैकादश प्रोक्ताः प्रगृह्णन्तु बलिं त्विमम्। युष्माकं प्रीतये वृत्तं नित्यं रक्षत गर्भिणीम्॥

इति मन्त्रेण जलाशये एकादशरुद्रेभ्यो बलिं दद्यात्। इति तृतीयमासबलिः ॥ ३ ॥

चतुर्थे मासि—रक्तान्नध्वजगन्धपुष्पवस्त्रहिरण्यादिभिः पूर्ववद्बलिं सम्पाद्य—

ॐ आदित्या द्वादश प्रोक्ताः प्रगृह्णीध्वं बलिं त्विमम्। युष्माकं तेजसां वृद्ध्या नित्यं रक्षतु गर्भिणीम्॥

इति द्वादशादित्येभ्यो बलिं दद्यात्। इति चतुर्थमासबलिः ॥ ४ ॥

पञ्चमे मासि—माध्वीपैष्टीसुरशर्करामधुमधुकेक्षुतिलपिष्टधूपलाजहिरण्यादिभिः सहकारमूले गर्भरक्षायै गोमयेन विनायकं कृत्वा वस्त्रयुग्मेनावेष्ट्य सम्पूज्य—

ॐ विनायक गणाध्यक्ष शिवपुत्र महाबल। प्रगृह्णीष्व बलिं चेमं सापत्यां रक्ष गर्भिणीम्॥

इति मन्त्रेण विनायकाय बलिं दद्यात् इति पञ्चममासबलिः ॥ ५ ॥

षष्ठे मासि—पायसघृतशर्करालाजहरिद्रान्नविशिष्टं बलिं प्रभातसमये नदीतीरे नद्यभावे तडागसमीपे—

ॐ स्कन्द षण्मुख देवेश पुत्रप्रीतिविवर्धन। प्रगृह्णीष्व बलिं चेमं सापत्यां रक्ष गर्भिणीम्॥

इति मन्त्रेण स्कन्दाय बलिं दद्यात्॥ ६ ॥

सप्तमे मासि—पायसलाजशर्कराघृतसहितं हरिद्राध्वजसर्वालङ्कारभूषितं बलिं रक्तवस्त्रद्वयवेष्टितशरीरो नदीतीरे—

ॐ प्रभासः प्रभवः श्यामः प्रत्यूषो मारुतो नलः। ध्रुवो धराधरश्चैव वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः॥
प्रगृह्णीध्वं बलिं चेमं नित्यं रक्षन्तु गर्भिणीम्॥

इति मन्त्रेणाष्टवसुभ्यो बलिं दद्यात्॥ ७ ॥

अष्टमे मासि—दध्यन्नमुद्गकृसरान्नसाज्यपक्वापक्वमत्स्यमांससुरेक्षुरसगन्धकृष्णवस्त्रकुक्कुटगन्धपुष्पधूपदीपहिरण्यसहितपूर्णकुम्भेन नीलोत्पलसहितेन स्वयं रक्तवस्त्रेणालङ्कृत्य दक्षिणस्यां दिशि—

ॐ पितृदेवि पितृज्येष्ठे बहुपुत्रि महाबले। भूतश्रेष्ठे दिवावासे निर्वृते शौनकप्रिये॥
प्रगृह्णीष्व बलिं चेमं सापत्यां रक्ष गर्भिणीम्॥

इति मन्त्रेण दुर्गायै बलिं दद्यात्॥ ८ ॥

नवमे मासि—दध्यन्नमुद्गकृसरान्नविशिष्टं पूर्ववत् प्रभातसमये—

ॐ रक्ष रक्ष महादेव भक्तानुग्रहकारक। पक्षिवाहन गोविन्द सापत्यं रक्ष गर्भिणीम्॥ १ ॥

इति मन्त्रेण विष्णवे बलिं दद्यात्॥ ९ ॥

दशमे मासि—पायसगुडापूपलाजपिष्टसक्तुभिः श्यामध्वजकृष्णगन्धपुष्पधूपदीपहिरण्यसहितपूर्णकुम्भेन नीलोत्पलसहितेन पूर्ववत् बलिहर्ता अलङ्कृत्यै वासुदेवालये अभ्यर्च्य वृक्षमूले—

ॐ त्रिविक्रम क्रमाक्रान्तभूरिभूतजगत्त्रय। गोवर्द्धनमहाशैलसमुद्धरणगर्वित ॥
हिरण्यकशिपोर्वक्षोविदारणनखाङ्कुर । विक्रमेण सुरज्येष्ठ रक्ताङ्गेन महोज्ज्वल॥
बलदेवानुज ज्येष्ठ कंसचाणूरक्रन्दन। गरुडध्वज दैत्यारेऽनन्ताच्युत चतुर्भुज॥
विधुन्तुदप्राणहर आदित्यकृतचक्रभृत्। भीषणाकार भुजगशयानेन्दीवरच्छवे॥ ४॥
पाञ्चजन्यप्रभाव्यक्तकौस्तुभोद्द्योतभास्कर । वाराहवपुषा पूर्वं सम्यग्धृतवसुन्धर॥ ५॥
शार्ङ्गज्याघातरुचिमत्किणाङ्कितमहाभुज । अनाद्यन्तासुररिपो धीर पद्मालयालय॥ ६॥
प्रगृह्णीष्व बलिं चेमं सापत्यां रक्ष गर्भिणीम्॥

एभिर्मन्त्रैर्बलिं दद्यात्। इति दशममासबलिदानप्रकारः॥ १०॥ इति गर्भरक्षाविधानम्।

गर्भिणी के प्रतिमास गर्भरक्षा के उपाय—जिन स्त्रियों का गर्भ गिर जाता हो, उनके लिये औषधोपचार लेने के साथ प्रतिमास गर्भरक्षा-हेतु निम्न उपाय भी करना चाहिये—

(१) प्रथम मास में गर्भरक्षा-हेतु श्री ब्रह्माजी (प्रजापति) को बलिदान करना चाहिये। उसके लिये—'एह्येहि भगवन् ब्रह्मन् प्रजाकर्त्तः प्रजापते। प्रगृह्णीष्व बलिं चेमं चापत्यां रक्ष गर्भिणीम्॥' इस मन्त्र को पढ़कर पवित्र एवं भक्तिपूर्ण मनोभाव के साथ खीर, घृत, श्वेत चन्दन, श्वेत छाता, अङ्गूठी, कवच, रत्न, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, सुवर्णसहित जलपूर्ण कुम्भ की बलि देनी चाहिये। बलिपात्र में दक्षिणा भी रखनी चाहिये।

(२) द्वितीय मास में पायस, दही-भात, खील, तिल की खली, वस्त्र, सुवर्ण तथा कुम्भादि से अलंकृत बलि को 'ॐ अश्विनौ देवदेवेशौ प्रगृह्णीतं बलिं त्विमम्। सापत्यां गर्भिणीं चेमां रक्ष त्वं पूजयाऽनया॥' इस मन्त्र के उच्चारण के साथ भक्तिभाव एवं पवित्र मन से अश्विनीकुमारों के निमित्त बलिदान करना चाहिये।

(३) तृतीय मास में दूध-भात, धान की खील, श्वेत ध्वज, सुवर्ण, वस्त्र, गन्ध आदि से बलि को सम्पादित करके 'ॐ रुद्राश्चैकादश प्रोक्ताः प्रगृह्णन्तु बलिं त्विमम्। युष्माकं प्रीतये वृत्तं नित्यं रक्षत गर्भिणीम्॥' इस मन्त्र से जलाशय में ग्यारह रुद्रों के लिये बलिदान करना चाहिये।

(४) चतुर्थ मास में लाल भात, लाल ध्वज, गन्ध, पुष्प, वस्त्र, सुवर्ण एवं जलपूर्ण कलश के साथ 'ॐ आदित्या द्वादश प्रोक्ताः प्रगृह्णीध्वं बलिं त्विमम्। युष्माकं तेजसा वृद्ध्या नित्यं रक्षतु गर्भिणीम्॥' इस मन्त्र से बारह आदित्यों को श्रद्धाभक्ति के साथ बलि प्रदान करनी चाहिये।

(५) पाँचवें मास में माध्वी (मधु से निर्मित), पैष्टी (अन्न की पीठी के सन्धान से निर्मित) सुरा, शर्करा, मधु, महुआ का फूल, ईख, तिलपिष्ट, धूप, लाजा तथा स्वर्णसहित जलकलश को लेकर आम के वृक्ष की जड़ में गोबर से गणेशजी बनाकर दो वस्त्रों से लपेटकर 'ॐ विनायक गणाध्यक्ष शिवपुत्र महाबल। प्रगृह्णीष्व बलिं चेमं सापत्यां रक्ष गर्भिणीम्॥' इस मन्त्र से विनायक के लिये बलिदान करना चाहिये।

(६) छठे मास में पायस, घृत, शर्करा, लाजा, हरिद्रान्न-विशिष्ट बलि को प्रभात काल में नदी या तालाब के किनारे 'ॐ स्कन्द षण्मुख देवेश पुत्रप्रीतिविवर्धन। प्रगृह्णीष्व बलिं चेमं सापत्यां रक्ष गर्भिणीम्॥' इस मन्त्र से स्कन्द (स्वामी कार्तिकेय) को बलि प्रदान करना चाहिये।

(७) सातवें मास में पायस, लाजा, शर्करा घृतसहित, हरिद्राध्वज, सर्वालङ्कारभूषित वाले को दो लाल वस्त्रों में लपेट कर नदी के तीर पर जाकर 'ॐ प्रभासः प्रभवः श्यामः प्रत्यूषो मारुतो नलः। ध्रुवो धराधरश्चैव वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः॥ प्रगृह्णीध्वं बलिं चेमं नित्यं रक्षन्तु गर्भिणीम्॥' इस मन्त्र से आठ वसुओं को बलि देनी चाहिये।

(८) आठवें मास में दही-भात, मूंग, खिचड़ी, पक्का-कच्चा मछली का मांस, सुरा, ईख का रस, गन्ध, कृष्ण वस्त्र, मुर्गा, गन्ध (इत्र), पुष्प, धूप, दीप, हिरण्यसहित पूर्णकुम्भ (जलपूर्ण) के साथ नीलकमलसहित स्वयं रक्तवस्त्र से बलि को अलंकृत करके दक्षिण दिशा की ओर जाकर 'ॐ पितृदेवि पितृज्येष्ठे बहुपुत्रि महाबले। भूतश्रेष्ठे दिवावासे निर्वृते शौनकप्रिये॥ प्रगृह्णीष्व बलिं चेमं सापत्यां रक्षगर्भिणीम्॥' इस मन्त्र के साथ दुर्गा के लिये बलि देनी चाहिये।

(९) नवें मास में दही-भात, मूंग, खिचड़ी अन्न से विशिष्ट करके गन्ध, पुष्प, शर्करादि, पीत वस्त्र अलंकारों से सुशोभित सम्पूर्ण कुम्भबलि को पूर्ववत् प्रभात काल में 'ॐ रक्ष रक्ष महादेव भक्तानुग्रहकारक। पक्षिवाहन गोविन्द सापत्यं रक्ष गर्भिणीम्॥' इस मन्त्र से विष्णु के लिये बलि देनी चाहिये।

(१०) दसवें मास में पायस, गुड़, अपूप (मालपूए), लाजा, पिष्टि, सत्तू आदि पदार्थों के साथ में श्याम ध्वज, कृष्ण गन्ध (कस्तूरी), पुष्प, धूप, दीप, सुवर्णसहित पूर्णकुम्भ तथा पूर्व की भाँति अलंकृत करके बलिहर्ता को सजा-बजाकर देवालय में अभ्यर्चित कर वृक्ष की जड़ में मूल में लिखित 'ॐ त्रिविक्रम क्रमा०' इत्यादि छः मन्त्रों को पढ़कर वासुदेव को बलि देनी चाहिये।

शीघ्रप्रसवोपायः

संस्कारभास्करे—

हिमवत्युत्तरे पार्श्वे शवरी नाम यक्षिणी। तस्या नूपुरशब्देन विशल्या स्यात्तु गर्भिणी स्वाहा॥

इति मन्त्रेणैकविंशतिदूर्वाङ्कुरैरेकपलं तिलतैलं प्रदक्षिणमावर्तयन्नष्टशतं मन्त्रयित्वा तत्तैलं किञ्चित्पाययेच्छेषमुदरे लेपयेदिति।

अथ यन्त्रप्रकारः—

गजाग्निवेदा उडुराट्शराङ्कारसर्षिपक्षा इति हि क्रमेण।
लिखेत्प्रसूतेः समये गृहे वै सुखेन नार्यः सुवते हि शीघ्रम्॥ इति।

शीघ्रप्रसवकारकमिदम्

८	१	६
३	५	७
४	९	२

शीघ्र प्रसव के उपाय—हिमवत्युत्तरे पार्श्वे शवरी नाम यक्षिणी। तस्या नूपुरशब्देन विशल्या गभिणी भवेत्॥' इस मन्त्र को पढ़कर इक्कीस दूर्वाङ्कुर तथा एक पल काले तिल का तैल प्रदक्षिणक्रम से घुमाकर एक सौ आठ बार अभिमन्त्रित करके उस तेल को गर्भिणी को पिला दे तथा पिलाने से जो शेष बचे, उसका गर्भिणी के पेट पर लेप लगा दे तथा पार्श्व में लिखे शीघ्र प्रसव यन्त्र (पन्द्रह यन्त्र = पञ्चदशी यन्त्र) को लिखकर गर्भिणी को दिखाने से शीघ्र ही प्रसव होता है।

यन्त्रनिर्माण प्रकार—गज (आठ), अग्नि (तीन), वेद (चार)—ये अङ्क ऊपर से नीचे प्रथम पङ्क्ति में, फिर उडुराट् (एक), शर (पाँच), अङ्क (नौ)—ये दूसरी पङ्क्ति में तथा (सरर्षियक्षा (६-७-२)—ये तीसरी पङ्क्ति में लिखने चाहिये।

बालानां रोगशमनविधानम्

वीरसिंहावलोकने—बालानां सर्वरोगोपशान्त्यर्थं व्याहृतिहोममन्नदानं च कुर्यात्। तत्रैव—

ताडनतर्जनहासभयाद्वा निजजननीप्राकृतहितभावात्।
स्कन्दमुखाः प्रथमा बलिहेतोः शिशुकममङ्गलमाशु विशन्ति॥

स्तब्धविलोचनशोणितगन्धः कुटिलमुखाल्परवो लुलिताक्षः।
स्तन्यपराङ्मुखगाढविमुष्टिश्चकितमनाः शिशुराकुलितस्तैः॥

बालानां प्रायेण स्कन्दमातृकादिबालघातकदेवदोषैरेव रोगा भवन्ति; तस्मात्तेषां बलिदानादिना शान्तिं कुर्यात्। तच्छांतिविधानं तु शान्तिसारादौ ज्ञेयं ग्रन्थविस्तरभयादत्र न लिख्यते। इति सामान्यतो बालरोगशमनविधानम्।

बालरोगों के कारण तथा प्रतिकार—वीरसिंहावलोक में लिखा है कि बालकों के सभी रोगों की शान्ति-हेतु व्याहृति होम तथा अन्नदान करना चाहिये। वहीं पर यह भी कहा गया है कि बालकों को ताडन (पीटने), तर्जन (बलपूर्वक रोकने), अधिक हँसाने, भयभीत करने आदि क्रियायें माता के द्वारा अपने स्वभाववश किये जाने पर स्कन्द-प्रमुख प्रमथगण बलि प्राप्त करने के लिये शिशु के अमङ्गल के लिये शीघ्र ही उसके शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। उसके कारण बालक स्तब्ध नेत्र वाला, रक्त गन्ध वाला, कुटिल मुख वाला, अल्परव (क्षीण आवाज) वाला, लुलिताक्ष (फड़कती हुई आँखें), माता का दूध न पीने वाला, मुट्ठियाँ भींचे रहने वाला, चकित होकर देखने वाला (कौंध पड़ने वाला) तथा आकुल-व्याकुल हो जाता है। प्रायः बालकों को स्कन्द मातृकादि बालघातक देवों के प्रकोप से ही रोग हो जाते हैं, उनकी शान्ति करनी चाहिये। बलिदान आदि के द्वारा भी उनकी शान्ति करना चाहिये। उस शान्तिविधान को शान्तिसार आदि ग्रन्थों में देखना चाहिये। यहाँ उसे ग्रन्थ के विस्तार भय से नहीं लिखा जा रहा है।

बालानां दुष्टदृष्टिदोषादौ रक्षाविधानम्

कपिलसंहितायाम्—

शिशुसंरक्षणार्थायाऽशुभग्रहनिवारिणीम्। रक्षां सन्ध्यासु कुर्वीत निम्बसर्षपगृञ्जनैः॥
फलीकरणसम्मिश्रैः करञ्जैरवलोकने। वचोधरान्नदेशेषु बालग्रहविमुक्तये॥
वासुदेवो जगन्नाथः पूतनातर्जनो हरिः। रक्षतु त्वरितो बालं मुञ्चमुञ्च कुमारकम्॥
कृष्ण रक्ष शिशुं शङ्खमधुकैटभमर्दन। प्रातः सङ्गवमध्याह्नसायाह्नेषु च सन्ध्ययोः॥
महानिशि सदा रक्ष कंसारिष्टनिषूदन। यद्गोरजःपिशाचांश्च ग्रहान्मातृग्रहानपि॥
बालग्रहान् विशेषेण छिन्धिछिन्धि महाभयान्। त्राहित्राहि हरे नित्यं त्वद्रक्षाभूषितं शिशुम्॥
इति भस्माभिमन्त्र्यैव भूषयेत्तेन भस्मना। शिरोललाटाद्यङ्गेषु रक्षां कुर्याद्यथा विधि॥
मन्त्रसंरक्षणादेवं शिशुः संवर्धतेन्वहम्।

बालकों को नजर लग जाने पर उपाय—कपिल संहिता में लिखा है—अशुभग्रह-निवारण के लिये तथा शिशुओं की रक्षा के लिये रक्षाकर्म कहा जा रहा है, जिसे सन्ध्याओं के समय में करना चाहिये। नीम, सफेद सरसों, लहसन, फली नामक मछली, जम्बीरी नीबू, करञ्ज के बीज—इनका सम्मिश्रण कर इनका भस्म बना ले तथा दूसरों के द्वारा दृष्टिदोष होने पर, अन्य लोगों की हाय पड़ने पर एवं बालग्रहों से मुक्ति के लिये मूल में लिखित 'वासुदेवो जगन्नाथ०' इत्यादि छः श्लोकमन्त्रों को पढ़कर बालक के शिर (माथे) आदि अङ्गों पर लगा दे। इस प्रकार मन्त्र से प्रतिदिन रक्षा करने पर शिशु नजर लगने, हाय पड़ने तथा बालग्रहों से बचा रहता है एवं प्रतिदिन बढ़ता रहता है।

हरिवंशे—

नदोङ्कमेनमारोप्य भूरेणुं परिगृह्य च। शिरः प्रदक्षिणं कुर्वन्मन्त्रमेनं जजाप ह॥
विष्णुस्ते पूर्वतः पातु रुद्रो रक्षतु दक्षिणे। ब्रह्मा च पश्चिमे पायाच्चन्द्रो रक्षत्वथोत्तरम्॥

उपरिष्टात्तथा सूर्यः पायाच्चाधश्च वासुकिः। पायादूर्ध्वमधो वत्सं शिष्टाः काष्ठाः समीरणः॥
स्वस्तिं करोतु भगवान् पिनाकी वृषभध्वजः। गावो रक्षन्तु सर्वत्र भूमौ पातु सदाशिवः॥
एवमुच्चार्य नन्दस्तु कृष्णं स्पर्श सर्वतः। एष मन्त्रो हि बालानां रक्षायै परिकीर्तितः॥

इति स्खलनादौ वालरक्षाविधानम्।

हरिवंश पुराण के अनुसार स्खलन से रक्षा करने का मन्त्र—(मूल में श्लोक १ से ५ तक) फिर नन्द ने इसको (कृष्ण को) गोद में लेकर धरती से रेणु उठाकर शिर पर प्रदक्षिणक्रम से उसे घुमाते हुए उसारा किया तथा इस मन्त्र को जपा—'हे बालक! विष्णु तेरी पूर्व से रक्षा करे। रुद्र दक्षिण से रक्षा करे। ब्रह्मा पश्चिम से रक्षा करे तथा चन्द्रमा उत्तर से रक्षा करे। सूर्य ऊपर से रक्षा करें तथा नीचे से वासुकी रक्षा करे। ऊर्ध्व तथा अधः में इस बालक की शिष्ट जन काष्ठा तथा समीरण रक्षा करे। भगवान् पिनाकी वृषभध्वज (शङ्कर) तेरा कल्याण करे। सम्पूर्ण जगह गायें तेरी रक्षा करे। भूमि पर सदा शिव रक्षा करे।' इस प्रकार से कहकर नन्द ने कृष्ण के सब शरीर पर हाथ फेरा। यह मन्त्र बालकों की रक्षा के लिये कहा गया है।

विमर्श—बच्चे को ताड़ित करना कथमपि उचित नहीं है। इस सम्बन्ध में संसार में जापानी माताओं का व्यवहार अन्य देशों की तुलना में अपने शिशुओं से उत्तम होता है। भारत में शिशु के नाल को घर में गाड़ने की प्रथा है; परन्तु जापान में तो इसे एक सुन्दर पेटी में सुरक्षित रखते हैं। यह माता एवं शिशु के अधिक भावनात्मक प्रेम का प्रतीक होता है। वहाँ के अस्पतालों में छुट्टी के समय उसको शिशु का नाल भेंट करते हैं—

Japanese mother were given their baby's umblical cord at the time they left the Hospital. In Japan the mother usually stays in the hospital until the ninth or tenth day when the umblical cord shrivel and drops off. The remment of the cord is placed in a pretty wooden box tied with ribbon and presented to the mother. —Everyday Health and Illness in Japan and America by William Candil.

चीन में अपने बीमार बच्चों का उपचार वहाँ की माताएँ स्वयं के परम्परागत अनुभव के आधार पर तथा ज्योतिषियों, तान्त्रिकों आदि से कराती हैं—

And they went to a range of other specialists for advice and treatment : Horoscope readers, Taoist, Buddhist and other priests, women experts in ritual performances; and even spirit-mediums.

—Chinese Traditional Etiology

महामारीशमनविधानम्

ब्रह्मवैवर्ते—

राजा च कुरुते पापं ब्रह्महत्यादिदारुणम्। वंशजान्हन्ति सहसा स्त्रीवधं कुरुते भृशम्॥
तेन राज्ञा हि सा पृथ्वी सनरा क्षयमाप्नुयात्। कालस्फोटादयो रोगा वैद्याऽविज्ञातलक्षणाः॥
प्रभवन्त्यौषधं नैव मन्त्रतन्त्राणि चैव हि। आशु मृत्युकराश्चैव ज्वरदाहकरास्तथा॥

हेमाद्रौ गर्गः—

रुद्रप्रकोपजो यस्माज्जनमारः प्रवर्तते। तस्मात्प्रसादयेद्यत्नाद्देवदेवं महेश्वरम्॥
गाणपत्येन विधिना अथर्वशिरसा तथा। यामलेन विधानेन कुर्याद्देवप्रसाधनम्॥
शिवशूक्तमुमासूक्तं जपेच्च शतरुद्रियम्। बल्योपहारान् विविधांश्चत्वरेषु निवेदयेत्॥

आवाह्य च गणैस्सार्द्धं रुद्रं रात्रावहस्सु च। ब्राह्मणान्भक्ष्यभोज्यैश्च दक्षिणाभिश्च तोषयेत्॥
प्रसादिते ततो रुद्रे जनमारो निवर्त्तते। आत्मरक्षां स्वयं कृत्वा ततः शान्तिं प्रयोजयेत्॥
आत्मरक्षा कवचादिना कर्त्तव्या।

नृसिंहपुराणे—
अनावृष्टिमहामारीज्वररोगभये तथा। नरसिंहं समाराध्य ब्राह्मणैर्वेदपारगैः॥
कारयेल्लक्षहोमं तु ग्रामे यश्च नराधिपः॥

नृसिंहमन्त्रो विष्णुप्रकरणे द्रष्टव्यः।

सुश्रुते—
स्थानत्यागाज्जपाद्धोमान्महामारी प्रशाम्यति॥ इति।

जपान्महामृत्युञ्जयनृसिंहशतचण्डीरुद्रविधानादिभिर्होमान्मृत्युञ्जयदुर्गाभैरवादिमन्त्रैः पायसतिलाज्यमधुत्रयहोमादित्यर्थः।

महामारीशमन विधान—ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में लिखा है—जब किसी देश का राजा ब्रह्महत्यादि पापकर्म करता है तथा अपने वंशजों एवं स्त्रियों के दारुण वधकर्म में प्रवृत्त होता है तो उस राजा के उस पापकर्म के फलस्वरूप उस राज्य में रहने वाले नागरिकों में पृथ्वी-मनुष्यों का क्षय, कालस्फोट आदि रोग होते हैं, जिनका निदान चिकित्सक भी नहीं कर पाते हैं। औषधियाँ तथा मन्त्र-तन्त्र भी प्रभाव नहीं करते हैं एवं उनसे तीव्र दाह तथा शीघ्र मृत्यु होती है।

हेमाद्रि में गर्ग का वचन है—जनमार (महामारी) रुद्र के प्रकोप से फैलता है; अतः देवदेव महेश्वर को प्रसन्न करना चाहिये। चबूतरों पर उनके लिये बलि उपहार आदि निवेदित करना चाहिये। गणपति अथर्वशीर्ष का पाठ एवं यामल के विधान से देव को प्रसन्न करना चाहिये। शिवसूक्त, उमासूक्त तथा शतरुद्रिय का जप करना चाहिये। दिन तथा रात में रुद्र का आवाहन उनके गणों के साथ करके उनकी पूजा करनी चाहिये तथा ब्राह्मणों को भोजन एवं दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करना चाहिये। इस प्रकार रुद्र के प्रसन्न होने पर जनमार समाप्त हो जाता है। स्वयं की रक्षा करके शान्तिकर्म का अनुष्ठान करना चाहिये। आत्मरक्षा कवचादि से करनी चाहिये॥

नृसिंहपुराण में कहा है—अनावृष्टि, महामारी, ज्वर तथा रोगभय में नरसिंह की आराधना करके वेदपाठी ब्राह्मणों के द्वारा अपने ग्राम या राजधानी में राजा को लक्ष होम कराना चाहिये (नृसिंह मन्त्र पीछे विष्णु प्रकरण में देखना चाहिये)।

सुश्रुतसंहिता में कहा है—स्थानत्याग, जप-होम आदि से महामारी शान्त होती है। (जपों में मृत्युञ्जय मन्त्र, नृसिंहमन्त्र, शतचण्डी, रुद्रविधानादि तथा होम मृत्युञ्जय, दुर्गा, भैरव आदि के मन्त्रों से पायस, तिलाज्य, मधुत्रय आदि से करना चाहिये—यह अभिप्राय है)।

विमर्श—ग्रीष्मकाल में महामारी से बचने के लिये श्रीलंका में पत्तिनी पूजा (कुलत्तीपर्व) मनाते हैं—

The contemporary rituals for Pattani are performed anually or in times of drough and pestilence. The annual rituals among the Sinhalese and Tamils of the east coast of Srilanka generally occur around May. For the rest of the year the temple doors are closed. According to local belief, when the doors are opened, there is an immediate increase in temperature. Humen beings most careful during this time to avoid eating hearty foods and to obtain polluting activities. After about a weak the priest begin to sing

the secred text which recount the myths of Pattini. This part of ceremony among Tamil Hindus is known a Kulatti; which lilterally means "cooling." By recounting the history of how the Goddes anger was cooled, the community is spared from drought, and people's bodies are cooled so that pestilence caused by the excessive bile is controlled—Impects of Ayurvedic Ideas in Srilanka.

इस प्रकार इस अनुष्ठान से रोग तथा अनावृष्टि आदि से भी बच जाते हैं।

अनावृष्टिशमनविधानम्

तत्र तावद्वरुणमन्त्रपुरश्चरणम् शारदातिलके। मन्त्रो यथा—

ॐ ध्रुवासुत्वासक्षितिषुक्षियन्तो व्यस्मत् पाशं वरुणोमुमोचत्।
अवोवन्वानाआदितेरुपस्थाद्यूयम्पातस्वस्तिभिः सदानः॥

द्विचत्वारिंशद्वर्णात्मक ऋग्वेदोक्तो मन्त्रः। अस्य वरुणमन्त्रस्य वसिष्ठ ऋषिः। त्रिष्टुप् छन्दः। वरुणो देवता। अनावृष्टिशमनार्थे जपे विनियोगः। ॐ वसिष्ठऋषये नमः शिरसि॥ १॥ ॐ त्रिष्टुप्छन्दसे नमः मुखे॥ २॥ ॐ वरुण-देवतायै नमः हृदये॥ ३॥ इति ऋष्यादिन्यासः।

अथ षडङ्गन्यासः—ॐ ध्रुवासुत्वासुक्षितिषु हृदयाय नमः॥ १॥ ॐ क्षियन्तोव्यस्मत्पाशं शिरसे स्वाहा॥ २॥ ॐ वरुणो मुमोचत शिखायै वषट्॥ ३॥ ॐ अवोवन्वाना अदिते कवचाय हुं॥ ४॥ ॐ रुपस्थाद्यूयम्पात नेत्रत्रयाय वौषट्॥ ५॥ ॐ स्वस्तिभिः सदान इत्यस्त्राय फट्॥ ६॥ इति हृदयादिन्यासः।

अथ मन्त्रवर्णन्यासः—ॐ ध्रुं नमः दक्षिणपादाङ्गुल्यग्रे॥ १॥ ॐ वां नमः दक्षिणपादाङ्गुलिमूले॥ २॥ ॐ सुं नमः दक्षिणगुल्फे॥ ३॥ ॐ त्वां नमः दक्षिणजानुनि॥ ४॥ ॐ सं नमः दक्षपादमूले॥ ५॥ ॐ क्षिं नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे॥ ६॥ ॐ तिं नमः वामपादाङ्गुलिमूले॥ ७॥ ॐ षुं नमः वामगुल्फे॥ ८॥ ॐ क्षिं नमः वामजानुनि॥ ९॥ ॐ यं नमः वामपादमूले॥ १०॥ ॐ तों नमः गुदे॥ ११॥ ॐ ष्यं नमः लिङ्गे॥ १२॥ ॐ स्मं नमः नाभौ॥ १३॥ ॐ त्यां नमः कुक्षौ॥ १४॥ ॐ शं नमः पृष्ठे॥ १५॥ ॐ वं नमः हृदये॥ १६॥ ॐ रुं नमः दक्षिणस्तने॥ १७॥ ॐ णों नमः वामस्तने॥ १८॥ ॐ मुं नमः गले॥ १९॥ ॐ मों नमः दक्षिणहस्ताङ्गुल्यग्रे॥ २०॥ ॐ चं नमः दक्षिणहस्ताङ्गुलि-मूले॥ २१॥ ॐ अं नमः दक्षिणमणिबन्धे॥ २२॥ ॐ वों नमः दक्षिणकूर्परे॥ २३॥ ॐ वं नमः दक्षिणबाहुमूले॥ २४॥ ॐ न्वां नमः वामहस्ताङ्गुल्यग्रे॥ २५॥ ॐ नां नमः वामहस्ताङ्गुलिमूले॥ २६॥ ॐ अं नमः वाममणिबन्धे॥ २७॥ ॐ दिं नमः वामकूर्परे॥ २८॥ ॐ तें नमः वामबाहुमूले॥ २९॥ ॐ रुं नमः वक्त्रे॥ ३०॥ ॐ पं नमः दक्षकपोले॥ ३१॥ ॐ स्थां नमः वामकपोले॥ ३२॥ ॐ द्यूं नमः दक्षिणनासिकायाम्॥ ३३॥ ॐ यं नमः वामनासिकायाम्॥ ३४॥ ॐ पां नमः दक्षिणनेत्रे॥ ३५॥ ॐ तं नमः वामनेत्रे॥ ३६॥ ॐ स्वं नमः दक्षिणकर्णे॥ ३७॥ ॐ स्तिं नमः वामकर्णे॥ ३८॥ ॐ भिं नमः भ्रूमध्ये॥ ३९॥ ॐ सं नमः मस्तके॥ ४०॥ ॐ दां नमः शिरसि॥ ४१॥ ॐ नं नमः सर्वाङ्गे॥ ४२॥ इति मन्त्रवर्णन्यासः। एवं न्यासं कृत्वा ध्यायेत्।

अथ ध्यानम्—

चन्द्रप्रभं पङ्कजसन्निषण्णं पाशां कुशाभीतिवरं दधानम्। मुक्ताविभूषाञ्चितसर्वगात्रं ध्यायेत्प्रसन्नं वरुणं विभूत्यै॥

इति ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य धर्मादिपरतत्त्वान्तपीठदेवताः पूर्ववत् सम्पूज्य मध्ये मूलेन मूर्त्तिं प्रकल्प्य आवाहनादिपुष्पान्तैरुपचारैर्भगवन्तं वरुणं सम्पूज्य आवरणपूजां कुर्यात्।

तद्यथा—(षट्कोणे) प्राचीक्रमेण आग्नेयादिकोणकेसरेषु मध्ये दिक्षु च ॐ ध्रुवासुत्वासक्षितिषु हृदयाय नमः॥ १॥ ॐ क्षियन्तोव्यस्मत्पाशं शिरसे स्वाहा॥ २॥ ॐ वरुणो मुमोचत् शिखायै वषट्॥ ३॥ ॐ अवोवन्नवानाअदिते कवचाय

हुम्॥ ४॥ ॐ रुपस्थाद्यूयम्पात नेत्रत्रयाय वौषट्॥ ५॥ ॐ स्वस्तिभिः सदान इत्यस्त्राय फट्॥ ६॥ इति षडङ्गानि पूजयेत्॥ १॥

ततो दलाग्रेषु प्राचीक्रमेण—ॐ शेषाय नमः॥ १॥ ॐ वासुकये नमः॥ २॥ ॐ तक्षकाय नमः॥ ३॥ ॐ कर्कोटकाय नमः॥ ४॥ ॐ पद्माय नमः॥ ५॥ ॐ महापद्माय नमः॥ ६॥ ॐ शङ्खपालाय नमः॥ ७॥ ॐ कुलिकाय नमः॥ ८॥ इति पूजयेत्॥ २॥

तस्माद्बाह्ये चतुरस्त्रे भूपुरे पूर्वादिदशदिक्षु—ॐ लं इन्द्राय नमः॥ १॥ ॐ रं अग्नये नमः॥ २॥ ॐ मं यमाय नमः॥ ३॥ ॐ क्षं निर्ऋतये नमः॥ ४॥ ॐ वं वरुणाय नमः॥ ५॥ ॐ यं वायवे नमः॥ ६॥ ॐ सं सोमाय नमः॥ ७॥ ॐ हं ईशानाय नमः॥ ८॥ ईशानपूर्वयोर्मध्ये ॐ आं ब्रह्मणे नमः॥ ९॥ निर्ऋतिपश्चिमयोर्मध्ये ॐ अं अनन्ताय नमः॥ १०॥ इति पूजयेत्॥ ३॥

तद्बहिस्तत्तत्समीपे—ॐ वज्राय नमः॥ १॥ ॐ शक्तये नमः॥ २॥ ॐ दण्डाय नमः॥ ३॥ ॐ खड्गाय नमः॥ ४॥ ॐ पाशाय नमः॥ ५॥ ॐ अङ्कुशाय नमः॥ ६॥ ॐ गदायै नमः॥ ७॥ ॐ त्रिशूलाय नमः॥ ८॥ ॐ पद्माय नमः॥ ९॥ ॐ चक्राय नमः॥ १०॥ इत्यायुधानि पूजयेत्॥ ४॥

एवमावरणपूजां कृत्वा धूपदीपनैवेद्यताम्बूलदक्षिणानीराजनप्रदक्षिणानमस्कारैः पूजां समाप्य यथाविधि वाग्यतो जपं कुर्य्यात्। अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः। जपान्ते वृष्टिकामनया वेतसोत्थाभिः क्षीररक्ताभिः समिद्भिः पायसान्नेन सर्पिः सिक्तेन च दशांशहोमं कृत्वा तद्दशांशेन तर्पणं तद्दशांशेन मार्जनं तद्दशांशतः यथाशक्ति वा पायसान्नेन ब्राह्मणभोजनं च कार्यम्।

शारदातिलके—

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं पायसेन दशांशतः। सर्पिः सिक्तेन जुहुयान्मन्त्री मन्त्रस्य सिद्धये॥
ऋणमुक्त्यै जपेन्मन्त्रं प्रत्यहं साष्टकं शतम्। जपेनानेन लभते महतीमव्ययां श्रियम्॥
शितेक्षुशकलैर्मन्त्री जुहुयाद्घृतसम्प्लुतैः। चतुर्दिनं दशशतमृणमुक्त्यै महाश्रियै॥
समिद्भिर्वेतसोत्थाभिः क्षीराक्ताभिर्दिनत्रयम्। जुहुयाद्वृष्टिसंसिद्ध्यै मन्त्रविद्विजितेन्द्रियः॥
अनेन विधिना मन्त्री सूर्ये शतभिषं गते। चतुःशतं घृतयुतं पायसं जुहुयाद्वशी॥
ऋणनाशाय सम्पत्त्यै वश्यारोग्याभिवृद्धये। भृगुवारे कृतो होमः पायसेन च सर्पिषा॥
महतीं सम्पदं कुर्यान्नाशयेत्सकलापदः। शालिभिर्घृतसंसिक्तैः सरिदन्तरितः सुधीः॥
त्र्यहं चतुःशतं हुत्वा स्तम्भयेत्परसैन्यकम्। सायं प्रत्यङ्मुखो वह्निमाराध्य प्रजपेन्मनुम्॥
चतुःशतं विमुच्येत मन्त्री सर्वैरुपद्रवैः। मन्त्री प्रत्यङ्मुखो भूत्वा तर्पयेद्विमलैर्जलैः॥
सर्वोपद्रवनाशाय समस्ताभ्युदयाप्तये। बहुना किमिहोक्तेन मन्त्रेणानेन साधकः॥
साधयेत्सकलान्कामान्जपहोमादितत्परः॥

इति वृष्टिप्रदवारुणीऋग्विधानम्।

अनावृष्टि-शमनहेतु वारुणमन्त्र का पुरश्चरण—अब शारदातिलक के अनुसार अनावृष्टि के समय वृष्टि कराने के लिये वारुण मन्त्र का पुरश्चरण लिखा जा रहा है। मन्त्र है—'ॐ ध्रुवासुत्वासक्षितिषुक्षियन्तो व्यस्मत् पाशं वरुणोमुमोचत्।अवोवन्वानाअदितेरुपस्थाद्यूयम्पातस्वस्तिभिः सदानः॥' यह ऋग्वेद के सातवें मण्डल के ८८वें सूक्त का सातवाँ मन्त्र है। इसमें बयालीस अक्षर हैं। सर्वप्रथम 'ॐ अस्य वरुणमन्त्रस्य वसिष्ठऋषिः। त्रिष्टुप् छन्दः। वरुणो देवता। अनावृष्टिशमनार्थे जपे विनियोगः' इस मन्त्र से विनियोग-हेतु जल छोड़े। फिर उसके आगे लिखे मूलोक्त 'ॐ वसिष्ठऋषये नमः शिरसि, ॐ त्रिष्टुप्छन्दसे नमः मुखे, ॐ वरुणदेवतायै नमः हृदये' इन तीन मन्त्रों से ऋष्यादि न्यास करे। फिर मूलोक्त 'ॐ ध्रुवासुत्वासुक्षितिषु हृदयाय नमः' इत्यादि छः मन्त्रों से हृदयादि

षडङ्गन्यास करे। फिर उसके आगे लिखे 'ॐ ध्रुं नमः दक्षिणपादाङ्गुल्यग्रे' इत्यादि ४२ मन्त्रों से मन्त्र के वर्णों का न्यास शरीर के निर्दिष्ट अङ्गों में करने के उपरान्त इस प्रकार ध्यान करे—

चन्द्रप्रभं पङ्कजसन्निषण्णं पाशांकुशाभीतिवरं दधानम्। मुक्ताविभूषाञ्चितसर्वगात्रं ध्यायेत्प्रसन्नं वरुणं विभूत्यै॥ (चन्द्रमा के समान प्रभा वाले, कमल पर विराजमान, पाश-अङ्कुश-अभयमुद्रा तथा वरमुद्रा धारण किये हुए, सर्वशरीर को मुक्ताओं से विभूषित किये वरुणदेव का विभूति प्राप्तिहेतु ध्यान करे)। यह ध्यानमन्त्र है। फिर मानसोपचारों से पूजा करके पूर्व की भाँति धर्मादिपरतत्त्वान्त पीठदेवताओं की पूजा करके पीठ के मध्यभाग में वरुणदेव की मूर्ति की कल्पना करके आवाहन से लेकर पुष्पार्पण-पर्यन्त भगवान् वरुण की पूजा करके आवरण-पूजा करे।

आवरण-पूजा—षट्कोण में प्राचीक्रम से 'ॐ ध्रुवासुत्वासक्षितिषु०' इत्यादि मूलोक्त छः मन्त्रों से वरुणदेव के हृदयादि छः अङ्गों की पूजा करे। फिर अष्टदल में प्राचीक्रम से 'ॐ शेषाय नमः' इत्यादि आठ मन्त्रों से पूजा करे। फिर उसके बाहर भूपुर में पूर्वादि दिशाओं में 'ॐ लं इन्द्राय नमः' इत्यादि दश मन्त्रों से इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा करे। फिर उनके समीप बाहर 'ॐ वज्राय नमः' इत्यादि दस मंत्रों से दिक्पालों के आयुधों की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार से आवरण-पूजा करके धूप-दीप-नैवेद्य-ताम्बूल-दक्षिणा-नीराजन प्रदक्षिणा-नमस्कार से पूजा को समाप्त करके यथाविधि स्पष्ट उच्चारणपूर्वक मूल मन्त्र (वारुणमन्त्र) का जप प्रारम्भ करे।

पुरश्चरण—इसका पुरश्चरण एक लाख मन्त्रजप करने से होता है। जप की समाप्ति पर वृष्टिकामना से वेतस वृक्ष की समिधाओं को दूध में डुबोकर पायसान्न तथा घृत से आप्लुत करके मन्त्रजप का दशांश होम करना चाहिये; फिर होम का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन तथा मार्जन का दशांश ब्राह्मणभोजन सम्पन्न कराना चाहिये।

शारदातिलक के अनुसार प्रयोग—एक लाख मन्त्र का जप करके फिर पायस से दशांश सर्पिःसिक्त हवन मन्त्रवेत्ता को करना चाहिये। इससे मन्त्र सिद्ध हो जाता है। ऋणमुक्ति के लिये एक सौ आठ मन्त्र का जप करना चाहिये। इसके जप से महान् लक्ष्मी प्राप्त होती है। श्वेत ईख के टुकड़ों को घी में डुबोकर चार दिन तक एक सहस्र आहुतियाँ महाश्री की प्राप्ति के लिये देनी चाहिये। वेतवृक्ष की दूधिया समिधाओं (दूध में डुबोकर) से तीन दिन तक जितेन्द्रिय होकर वृष्टि कराने के लिये आहुति देनी चाहिये। जब सूर्य शतभिषा नक्षत्र में हो तब जितेन्द्रिय होकर चार सौ घृतयुक्त पायस का होम ऋणनाश, सम्पत्ति की प्राप्ति, वशीकरण तथा आरोग्य की अभिवृद्धि के लिये करना चाहिये। भृगुवार (शुक्रवार) को घी तथा खीर का होम करने से महान् सम्पत्ति की प्राप्ति होती है तथा सम्पूर्ण आपदाओं का नाश होता है। विद्वान् को घृताक्त चावलों से नदी के भीतर (जल में) तीन दिन तक चार सौ आहुति प्रतिदिन देना चाहिये; इससे पराई सेना का स्तम्भन होता है। सायङ्काल में साधक पश्चिम की ओर को मुख करके अग्नि की आराधना करके मन्त्रजप करे तो चार सौ मन्त्र प्रतिदिन जपने से सभी उपद्रवों से मुक्त हो जाता है। मन्त्रसाधक को पश्चिम की ओर मुख करके निर्मल जल से (वरुणदेव का) तर्पण करना चाहिये, इससे उसके समस्त उपद्रव नष्ट होते हैं तथा सब प्रकार की उन्नति भी होती है। अधिक क्या कहा जाय; इस मन्त्र के जप-होमादि से सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं।

वृष्टिप्रदविधानं द्वितीयम्

बृहदृग्विधाने शौनकः—

अच्छावदेति सूक्तं तु वृष्टिकामः प्रयोजयेत्। निराहारः क्लिन्नवासा अचिरेण प्रवर्षति॥
हुत्वायुतं वैतसीनां क्षीराक्तानां हुताशने। महद्वर्षमवाप्नोति सूक्तेनाच्छावदेन हि॥

अनेन सूक्तेन प्रत्यृचं वा दिश उपस्थेया इति सायणभाष्ये। अथ अच्छावदेति सूक्तं ऋ० अ० ४ अ० ४ वर्ग २७। ॐ अच्छावदतवसंङ्गीर्भिराभिः स्तुहिपर्जन्यंनमसाविवास। कनिक्रदद्वृषभोजीरदानूरेतोदधात्योषधीषुगर्भम्॥१॥ विवृक्षान्हन्त्युतहन्तिरक्षसोविश्वंविभायभुवनंमहावधात्। उतानागाईषतेवृष्ण्यावतोयत्पर्जन्यः स्तनयन्हन्तिदुष्कृतः॥२॥ रथीवकशयाश्वांअभिक्षिपन्नाविदूतान् कृणुतेवर्ष्या ३ अह। दूरात्सिंहस्यस्तनथाउदीरतेयत्पर्जन्यः कृणुतेवर्ष्य १ नभः॥३॥ प्रवातावान्तिपतयन्तिविद्युतउदोषधीर्जिहतेपिन्वतेस्वः। इराविश्वस्मैभुवनायजायतेयत्पर्जन्यः पृथिवीरेतसावति॥४॥ यस्यव्रतेपृथिवीनन्नमीतियस्यव्रतेशफवज्जर्भुरीति। यस्यव्रतओषधीर्विश्वरूपाः सनः पर्जन्यमहिशर्मयच्छ॥५॥ दिवोनोवृष्टिंमरुतोररीध्वंप्रपिन्वतवृष्णोअश्वस्यधाराः। अर्वाङेतेनस्तनयित्नुनेह्यपोनिषिञ्चन्नसुर पितानः॥६॥ अभिक्रन्द-स्तनयगर्भमाधाउदन्वतापरिदीयारथेनदृतिंसुकर्षविषितंन्यञ्चसमाभवन्तूद्वतोनिपादाः॥७॥ महान्तंकोशमुदचानिषि-ञ्चस्यन्दन्तांकुल्याविषिताःपुरस्तात्॥ घृतेनद्यावापृथिवीव्युन्धिसुप्रपाणंभवत्वघ्न्याभ्यः॥८॥ यत्पर्जन्यकनिक्रदत्स्तन-यन्हंसिदुष्कृतः प्रतीदंविश्वं मोदतेयत्किञ्चपृथिव्यामधि॥९॥ अवर्षीर्वर्षमुदुषूगृभायाकर्धन्वान्यत्येतवाउ। अजीजन ओषधीर्भोजनायकमुतप्रजाभ्योविमोदनीषाम्॥१०॥ इति दशर्चं सूक्तम्। अनेन सूक्तेन प्रत्यृचं वा अयुतवेतसीनां क्षीराक्तानां होमाच्छीघ्रं वर्षति। होमान्ते इदं पर्जन्याय इति त्यागं कुर्यादितिपर्जन्यविधानम्।

द्वितीय वृष्टिकारक मन्त्रप्रयोग—बृहद् ऋग्विधान में शौनक का कथन है—'अच्छावद०' इत्यादि सूक्त का प्रयोग वृष्टि की कामना से करना चाहिये, यह सूक्त निराहार तथा गीले कपड़ों में पढ़ना चाहिये तथा एक-एक अयुत वेत की समिधाओं को दूध में डुबोकर हवन करे तो शीघ्र ही बहुत वृष्टि होती है। इस सूक्त का खड़े होकर प्रत्येक दिशा में मुख करके पाठ करना चाहिये। (यह सूक्त ऋग्वेद के चौथे अष्टक के चौथे अध्याय अथवा मण्डल ५। सूक्त ८३ में है, उसमें दस मन्त्र है)।

इस सूक्त के भौम अत्रि ऋषि हैं, पर्जन्य देवता है तथा त्रिष्टुप् जगती एवं अनुष्टुप् छन्द है। जिनका विनियोग में प्रयोग करना चाहिये। इस सूक्त की प्रत्येक ऋचा से अयुत संख्या में होम करना चाहिये तथा आहुति के अन्त में 'इदं पर्जन्याय न मम' कहकर त्याग भी करना चाहिये।

विशेष—इस प्रयोग का जलचर राशिगत चन्द्रमा में तथा वृष्टि के आर्द्रादि दश सूर्यनक्षत्रों में अनावृष्टि रहने पर प्रयोग करना चाहिये।

अथ तिस्रो वाच इत्यादिसूक्तद्वयविधानम् ; ऋग्विधाने शौनकः—

आस्यदघ्नं विगाह्यापः प्राङ्मुखः प्रयतः शुचिः। सूक्ताभ्यां तिस्र आदिभ्यामुपतिष्ठेत भास्करम्॥
अनश्नतैतज्जप्तव्यं वृष्टिकामेन यत्नतः। पञ्चरात्रेऽप्यतिक्रान्ते महतीं वृष्टिमाप्नुयात्॥

ॐ तिस्रो वाच इत्यादिसूक्तस्य अग्निपुत्रः कुमार ऋषिः वसिष्ठो वा। त्रिष्टुप्छन्दः। पर्जन्यो देवता। वृष्टिप्राप्त्यर्थे विनियोगः।

ॐ तिस्रो वाचः प्रवदज्योतिरग्राया एतद्दुह्रेमधुदोघमूधः। सवत्सं कृण्वन् गर्भमोषधीनां सद्योजातो वृषभो रोरवीति॥ योवर्धनओषधीनांयोअपांयोविश्वस्य जगतो देव ईशे। सत्रिधातुशरणं शर्मयंसत्त्रिवर्तुज्योतिः स्वभिष्ट्य १ स्मे॥ स्तरीरुत्वद्भवतिसूतउत्वद्यथावशन्तन्वञ्चक्रएषः । पितुःपयः प्रतिगृभ्णातिमातातेन पितावर्धतेतेनपुत्रः॥ यस्मिन्विश्वानिभुवनानितस्थुस्तिस्त्रोद्यावस्त्रेधासस्रुरापः । त्रयः कोशानूउपसेचनासोमध्वश्चोतन्त्यभितोविरप्शम्॥

इदं वचः पर्जन्यायस्वराजेहृदोअस्त्वन्तरंतज्जुजोषत्।
मयोभुवोवृष्टयः सन्त्वस्मेसुपिप्पलाओषधीर्देवगोपाः॥

पुरेतोधावृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्माजगतस्तस्थुषश्च।
तन्मऋतं पातु शतशारदाययूयं पातस्वस्तिभिः सदानः॥

इति प्रथमसूक्तम्।

ॐ पर्जन्यायेति सूक्तस्य अग्निपुत्रः कुमार ऋषिः वसिष्ठो वा। गायत्री छन्दः। पर्जन्यो देवता। वृष्टिप्राप्त्यर्थे जपे विनियोगः। ॐ पर्जन्यायप्रगायतदिवस्पुत्रायमीढुषे। सनोयवसमिच्छतु॥ १॥ योगर्भमोषधीनाङ्गवाङ्कृण्णोत्पर्वताम्। पर्जन्यः पुरुषीणाम्॥ २॥ तस्माइदास्येहविर्जुहोतामधुमत्तमम्। इलान्नः संयतं करत्॥ ३॥

इति वृष्टिप्राप्तिकरविधानम्।

तृतीय वृष्टिकारक मन्त्रप्रयोग—ऋग्विधान में शौनक ने कहा है—जल के भीतर आस्यदघ्न (मुख के बराबर गहराई तक जिसमें मुख में पानी न जा सके) खड़े होकर प्रयत्नपूर्वक पवित्र शरीर तथा पवित्र मन से 'तिस्रोवाचः प्रवद' सूक्त का निराहार रहकर सूर्य के उपस्थित रहने तक निरन्तर जप करते रहने से पाँच रात्रि के अतिक्रान्त होने पर या उनके भीतर घोर वर्षा होती है। सर्वप्रथम 'ॐ तिस्रोवाचः इत्यादि सूक्तस्य अग्निपुत्रः कुमार ऋषिः वसिष्ठो वा। त्रिष्टुप् छन्दः। पर्जन्यो देवता। वृष्टिप्राप्त्यर्थे विनियोगः' इस मन्त्र से विनियोग करके फिर मूल में लिखित 'ॐ तिस्रोवाचः प्रवद०' इत्यादि छः ऋचाओं के सूक्त का पाठ करना चाहिये। फिर 'ॐ पर्जन्यायेति' द्वितीय सूक्त का भी पाठ करनी चाहिये।

द्वितीय सूक्त का विनियोग है—'ॐ पर्जन्यायेति सूक्तस्य अग्निपुत्रः ऋषिः वसिष्ठो वा। गायत्री छन्दः। पर्जन्यो देवता। वृष्टिप्राप्त्यर्थे जपे विनियोगः' इससे विनियोग करे तथा मूल में लिखित 'ॐ पर्जन्याय प्रगायत दिवस्पुत्राय मीढुषे। सनो यव समिच्छतु॥ १॥ योगर्भमोषधीनां गवां कृणोत्पर्वताम्। पर्जन्यः पुरीषीणाम्॥ २॥ तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तमम्। इलां नः संयतं करत्॥ ३॥' यह पर्जन्य सूक्त है।

विशेष—इनमें प्रथम सात ऋचाओं वाला सूक्त ऋग्वेद के सातवें मण्डल का १०१वाँ तथा द्वितीय सूक्त का १०२वाँ है।

सर्वरोगनाशकधर्मराजमन्त्रविधानम्

मन्त्रमहोदधौ मन्त्रो यथा—'ॐ क्रौं ह्रीं आं वैं वैवस्वताय धर्मराजाय भक्तानुग्रहकृते नमः' इति चतुर्विंशतिवर्णो मन्त्रः। नास्य ऋष्यादिपूजाविधानं सिद्धमन्त्रत्वादिति। ॐ क्रौं ह्रीं हृदयाय नमः॥ १॥ ॐ आं वैं शिरसे स्वाहा॥ २॥ ॐ वैवस्वताय शिखायै वषट्॥ ३॥ ॐ धर्मराजाय कवचाय हुं॥ ४॥ ॐ भक्तानुग्रहकृते नेत्रत्रयाय वौषट्॥ ५॥ ॐ नमः अस्त्राय फट्॥ ६॥ इति षडङ्गन्यासं कृत्वा ध्यायेत्।

अथ ध्यानम्—

पाथःसंयुतमेधसन्निभतनुः प्रद्योतनस्यात्मजो नृणां पुण्यकृतां शुभावहवपुः पापीयसां दुःखकृत्।
श्रीमद्दक्षिणदिक्पतिर्महिषगोभूषाभरालङ्कृतो ध्येयः संयमनीपतिः पितृगणस्वामी यमो दण्डभृत्॥
अभ्यस्तोयं सदा मन्त्रः सकलापद्विनाशनः। नरकप्राप्तिरोद्धा स्याद्रिपुभीतिनिवर्तकः॥

इति धर्मराजमन्त्रानुष्ठानम्।

सर्वरोगनाशक धर्मराज मन्त्रप्रयोग—'ॐ क्रौं ह्रीं आं वैं वैवस्वताय भक्तानुग्रहकृते नमः।' यह चौबीस अक्षरों का मन्त्र है। यह एक सिद्ध मन्त्र है; अतः इसके ऋष्यादि पूजा का विधान (मन्त्रमहोदधि में) नहीं कहा गया है। 'ॐ क्रौं हृदयाय नमः' इत्यादि मूल में लिखित छः मन्त्रों से हृदयादि षडङ्ग न्यास करना चाहिये (मन्त्रमहोदधि में इसका करन्यास नहीं बताया है; परन्तु मन्त्रमहार्णव में करन्यास भी लिखा गया है)।

करन्यास—'ॐ क्रौं ह्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ आं वैं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ वैवस्वताय मध्यमाभ्यां नमः, ॐ धर्मराजाय अनामिकाभ्यां नमः, ॐ भक्तानुग्रह कृते कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ नमः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।'

इनका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये। अग्नि तथा सूर्यसंयुक्त मेघ की भाँति आभा वाले सूर्य के पुत्र, जिनका शरीर पुण्यात्माओं के लिये शुभ तथा पापात्माओं को भयङ्कर है; श्रीमान् दक्षिण दिशा के पति, भैंसे पर सवार, भूषा से अलंकृत, संयमनीपति, पितृगणों के स्वामी, दण्डधारी यम का ध्यान करे। इस मन्त्र का नित्य अभ्यास करने से सब पाप दूर हो जाते हैं।

चित्रगुप्तमन्त्रानुष्ठानम्

तत्रैव मन्त्रो यथा—'ॐ नमो विचित्राय धर्मलेखकाय यमवाहिकाधिकारिणे म्ल्व्यूंजन्म सम्पत्प्रलयं कथय कथय स्वाहा' इत्यष्टात्रिंशदक्षरो मन्त्रः। अस्य ऋष्यादिन्यासपूजाऽभावः सिद्धमन्त्रत्वात्। ॐ नमो विचित्राय हृदयाय नमः॥ १॥ ॐ धर्मलेखकाय शिरसे स्वाहा॥ २॥ ॐ यमवाहिकाधिकारिणे शिखायै वषट्॥ ३॥ ॐ म्ल्व्यूंजन्मसम्पत्प्रलयं कवचाय हुं॥ ४॥ ॐ कथयकथय नेत्रत्रयाय वौषट्॥ ५॥ ॐ स्वाहा इत्यस्त्राय फट्॥ ६॥ इति षडङ्गन्यासं कृत्वा ध्यायेत्—

किरीटोज्ज्वलं वस्त्रभूषाभिरामं विचित्रासनासीनमिन्दुप्रभास्यम्।
नृणां पापपुण्यानि पत्रे लिखन्तं भजे चित्रगुप्तं सखायं यमस्य॥

सिद्धमन्त्रमिमं पुंसां जपतां चित्रगुप्तकः। प्रसन्नो गणयेत्पुण्यं नैव पापं कदाचन॥

इति चित्रगुप्तमन्त्रविधानम्।

इति श्रीवीकानेरराज्यान्तर्गतश्रीरत्नगढ़नगरनिवासिना गौडवंशोद्भवश्रीवसिष्ठगोत्रश्रीरामकृष्णपौत्रेण श्रीकस्तूरीचन्द्रसूनुना श्रीमहादेवभक्तशुक्लयजुर्वेदीयमाध्यन्दिनवाजसनेयीशाखानुयायिना वैद्यपण्डितश्रीचतुर्थीलालशर्मणा विरचिते अनुष्ठानप्रकाशे महानिबन्धे पुरश्चरण(प्रयोग)काण्डे सर्वरोगोपशमनप्रकरणं सप्तमं समाप्तम्।

चित्रगुप्त मन्त्र का अनुष्ठान—'ॐ नमो विचित्राय धर्मलेखकाय यमवाहिकाधिकारिणे म्ल्व्यूं जन्म सम्पत् प्रलयं कथय कथय स्वाहा' यह अड़तीस अक्षरों का मन्त्र है। यह एक सिद्ध मन्त्र है, जिसके ऋष्यादिन्यास का अभाव है। षडङ्गन्यास इस प्रकार होता है—ॐ नमो विचित्राय हृदयाय नमः, ॐ धर्मलेखकाय शिरसे स्वाहा, ॐ यमवाहिका-धिकारिणे शिखायै वषट्, ॐ म्ल्व्यूं जन्म सम्पत् प्रलयं कवचाय हुं, ॐ कथय कथय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा इत्यस्त्राय फट्।'

ध्यान—'किरीटोज्ज्वलं वस्त्रभूषाभिरामं, विचित्रासनासीनमिन्दुप्रभास्यं नृणां पापपुण्यानि पत्रे लिखन्तं भजे चित्रगुप्तं सखायं यमस्य॥' (उज्ज्वल मुकुट तथा अभिराम वेषभूषा धारण किये, चन्द्रमा के समान आभा वाले, मनुष्यों के पुण्यों एवं पापों को कागज पर लिखने वाले चित्रगुप्त, जो यमराज के सखा हैं, उनको भजे)।

फलश्रुति—जो इस सिद्ध मन्त्र को (चित्रगुप्त मन्त्र को) नित्यप्रति प्रसन्न मन से जपता है, तो प्रसन्न चित्रगुप्त उसके पुण्यों को ही गिनते हैं, पाप को कभी नहीं गिनते हैं अर्थात् उसके कर्म पुण्यात्मक ही होते हैं; पापात्मक नहीं होते हैं।

विमर्श—इस प्रकार इस ग्रन्थ के प्रथम काण्ड विचारकाण्ड में सामान्य प्रकरण-होमविचार प्रकरण तथा तान्त्रिक होमविचार प्रकरण ये तीन प्रकरण हैं, द्वितीय काण्ड में (पद्धतिकाण्ड) में तीन प्रकरण तथा अन्तिम तृतीय पुरश्चरणकाण्ड में सात प्रकरण हैं।

ग्रन्थालङ्कारः

देशे मनोज्ञे हि मरौ बभूव वीकोजिनामा नृपतिः पुरा हि।
तस्यैव नाम्ना खलु राजधानी लोके विकानेर इति प्रथाङ्गता॥ १॥

तदन्तरे शक्रपुरोपमे पुरे श्रीरत्नदुर्गे सुजनैः सुसेविते।
आसीद्वसिष्ठान्वयगौडविप्रो माध्यन्दिनीयो बुधजीवराजः॥ २॥

तस्यात्मजा बाणमितास्तु सद्गुणाः सुवेदविद्याऽध्ययने च नैपुणाः।
आयातयातद्विजशुद्धप्राङ्गणा वीर्येण सन्ताडितवैरिदुर्गणाः॥ ३॥

एतेषु मध्ये खलु रामकृष्णो ज्ञानेन स्वल्पीकृतसर्वतृष्णः।
स्वबुद्धितः खण्डितवैरिप्रश्नः सुभक्तिसन्तर्पितदेवकृष्णः॥ ४॥

तस्याऽभवन्नाममिताः सुपुत्राः स्वधर्म्मयायिस्वकलत्रमित्राः।
गृहेषु संलेखितरम्यचित्राः श्रीकान्तपूजानिरताः पवित्राः॥ ५॥

इमानि नामानि भवन्ति तेषां चतुर्भुजाख्यो विबुधोऽयमाद्य।
कस्तूरिचन्द्राभिधसज्जनोऽपरोऽपरोगुणैर्मण्डितजेष्ठरामः॥ ६॥

स जेष्ठरामः खलु पण्डिताङ्ग्रयः षट्शास्त्रवेत्ता द्विजकर्म्मतत्परः।
त्यागी मनस्वी द्विजदेवभक्तो हुतावशिष्टान्नसदानुरक्तः॥ ७॥

तत्रापि मध्यो निजवंशपालकः कस्तूरिचन्द्राख्यमहत्सुशीलः।
तस्मात्सुपुत्रावनवद्यवन्द्यविद्यान्वितौ द्वौ नितरामभूताम्॥ ८॥

चतुर्थिलालाख्यगुरूमुखाख्यौ सुज्ञौ गुणाढ्यौ निजधर्मतत्परौ।
ज्येष्ठस्तयोर्वै खलु पण्डिताग्रणीः षट्शास्त्रवेत्ता शिवपूजने रतः॥ ९॥

षट्कर्माभिरतो नित्यं देवतातिथिपूकः। हुतशेषं तु भुञ्जानश्चतुर्थीलालपण्डितः॥ १०॥

मातामहो यस्य बभूव पण्डितः श्रीरामनामा प्रथितः स्वदेशे।
दाता वदान्यो धनिभिश्च वन्द्यो भिषक्सुवृत्त्या परिपूर्णकोशः॥ ११॥

एतादृशे शुद्धकुले विशाले चतुर्थिलालो हि बभूव चन्द्रमाः।
परोपकारी निजवंशकेतुः शिष्टानुरागी च निबन्धकर्त्ता॥ १२॥

यस्य माता हरीवाई पिता कस्तूरिचन्द्रकः।
यथाऽनसूया साध्वी सा यथाऽत्रिस्स तथा खलु॥ १३॥

सूत्रं कात्यायनं यस्य शाखा माध्यन्दिनीयिका।
श्रीवसिष्ठकुलं यस्य स चतुर्थ्याख्यपण्डितः॥ १४॥

तेनायं रचितो ग्रन्थो गौडानां प्रीतिदः सदा।
अनेन प्रीयतां शम्भुर्भवान्या सह सर्वदा॥ १५॥
व्योमशास्त्राङ्कचन्द्रेब्दे १९६० विक्रमादित्यसंज्ञके।
फाल्गुने शुक्लपञ्चम्यां ग्रन्थः पूर्णोऽभवच्छिवः॥ १६॥

॥ समाप्तोऽयं महानिबन्धः॥

ग्रन्थालङ्कार—मरु नामक मनोज्ञ देश में एक बीकाजी नामक राजा हुए, उनके नाम पर ही उनकी राजधानी बीकानेर (बीकानगर) प्रसिद्ध हुई। उसके अन्तर्गत इन्द्रपुरी के समान अनुपम पुर श्रीरतनगढ़ में सज्जनों के द्वारा सुसेवित वसिष्ठगोत्रीय माध्यन्दिनि शास्त्रीय गौड़ ब्राह्मण विद्वान् जीवराज हुए। उनके पाँच पुत्र हुए, जो विद्याध्ययन में निपुण थे। उनमें से एक रामकृष्ण थे, जिन्होंने ज्ञान प्राप्त कर अपनी तृष्णा न्यून कर ली थी। उनके आँगन में (घर में) आने-जाने वाले ब्राह्मणों से पवित्रता थी तथा वे अपने बौद्धिक पराक्रम से प्रतिद्वन्द्वियों को सन्ताडित करते थे एवं उनके प्रश्नों का खण्ड-खण्ड कर देते थे। अपनी भक्ति से उन्होंने श्रीकृष्ण भगवान् को प्रसन्न किया था। उनके तीन सुपुत्र हुए, जो अपने धर्म-कलत्र तथा मित्रों से स्नेह करते थे। घर में सुन्दर चित्र बनाते थे तथा श्रीविष्णु की पूजा में निरत रहते थे। उनमें से प्रथम पुत्र चतुर्भुज नाम वाले विद्वान् थे। दूसरे श्री कस्तूरीचन्द्र थे, जो अपनी सज्जनता तथा विद्वत्ता में श्रेष्ठ थे। तीसरे श्री जेष्ठराम थे। वह जेष्ठराम पण्डितों में अग्रणी, छः दर्शनों के मर्मज्ञ तथा द्विजकर्म में सदैव तत्पर रहने वाले थे। वे त्यागी, मनस्वी, द्विजदेवों के भक्त थे तथा सदैव जो अन्न हवन करने पर शेष रहता था, उसका ही आहार करते थे। उन तीन पुत्रों में जो मंझले पुत्र श्री कस्तूरीचन्द्र थे, वे अत्यधिक सुशील थे। उन श्री कस्तूरीचन्द्र के अनवद्य तथा विद्या से युक्त दो पुत्र हुए। उनमें चतुर्थीलाल नामक पुत्र गुरुमुख से प्राप्त ज्ञान द्वारा सुज्ञ, गुणाढ्य, निजधर्म-तत्पर तथा उन दोनों पुत्रों में ज्येष्ठ हुआ। पण्डितों में अग्रणी, षट्शास्त्रवेत्ता, शिवभक्त, नित्य षट्कर्मरत, नित्य देवता-अतिथिपूजक तथा हुतशेष भोजन करने वाले चतुर्थीलाल पण्डित के नाना पण्डित श्रीराम नाम से अपने क्षेत्र में प्रसिद्ध थे। वे दानशील, सत्यवादी, धनियों के द्वारा वन्दित थे तथा चिकित्सा वृत्ति से परिपूर्ण कोश वाले थे। इस प्रकार के शुद्ध विशाल कुल में चतुर्थीलाल चन्द्रमा के समान परोपकारी, निजवंश में पताका के समान, शिष्टानुरागी, निबन्धग्रन्थों की रचना करने वाला हुआ। उसकी माता हीराबाई, पिता कस्तूरीचन्द्र दोनों ही अनसूया तथा अत्रि के समान थे, जिनकी शाखा माध्यन्दिनी तथा सूत्र कात्यायन का था। ऐसे वसिष्ठ कुल में उत्पन्न चतुर्थीलाल पण्डित के द्वारा रचा गया ग्रन्थ गौडों के लिये प्रसन्नतादायक होगा। इस ग्रन्थ से भगवान् शङ्कर प्रसन्न हों। श्री विक्रमादित्य के १९६० संवत्सर में तथा शकाब्द १८२६ (तदनुसार ईस्वी सन् १९०४) में चान्द्रमास फाल्गुन शुक्ल पक्ष की पञ्चमी नामक तिथि में इस अनुष्ठानप्रकाश नामक छठवें निबन्धग्रन्थ की समाप्ति हुई। यह वाचकों के लिये कल्याणदायक हों।

सप्तषष्ट्युत्तरे वर्षे द्विसाहस्रे च वैक्रमे। फाल्गुने च सिते पक्षे सप्तम्यां शनिवासरे॥ १॥
एकोनविंशतितमे द्वात्रिंशदब्धिके शके। युगाब्दे पञ्चसाहस्रे तथा एकादशोत्तरे॥ २॥
निरयणे कुम्भेऽर्के सायने मीनसंस्थिते। रोहिण्यां प्रीतियोगे च वाणिजे करणे शुभे॥ ३॥
श्रीवत्से निर्मिते तत्र सर्वार्थसिद्ध्यपिस्तथा। नवनीतानुरोधेन गुप्तेन प्रकाशकेन च॥ ४॥
नवीनेन च गुप्तेन सुतेन च तच्छ्रेष्ठिना। वाराणस्यां संस्थितेन चौखम्बासुरभारतीम्॥ ५॥
अनुष्ठानप्रकाशस्य निबन्धस्य प्रबोधये। प्रदेशे मध्यनामाख्ये भारते मध्यसंस्थिते॥ ६॥

भिण्डर्षिनामके जिल्ले लहाराख्ये जनपदे। शिवधामात्सुपूर्वे च लाक्षागारस्य पश्चिमे॥ ७॥
अश्ववारादुत्तरे तु चन्द्रावलितो दक्षिणे। विश्रुते बरहाग्रामे ब्रह्मविद्याश्रमे शुभे॥ ८॥
यक्षेश्वरसमीपे च बर्हा इव सुपावने। विप्राणां सङ्कुले चैव आदिगौडकुले तथा॥ ९॥
वसिष्ठगोत्रजातेन दीक्षितेनास्पदेन च। ज्योतिर्विदेन वैद्येन बहुभाषाविदेन पि॥ १०॥
नानाशास्त्र अधीतेन स्वाध्यायनिरतेन च। साहबदासगौडेन कात्यायनेनाभयेन वा॥ ११॥
पाठकानां हितार्थाय सुधीनां रञ्जनाय च। सुटीका हिन्दीभाषायां सुस्पष्टा पूर्णताङ्गता॥ १२॥

इस प्रकार पं० चतुर्थीलाल-विरचित अनुष्ठानप्रकाश-महानिबन्ध के तृतीय काण्ड पुरश्चरणकाण्ड के सप्तम प्रकरण सर्वरोगोपशमन प्रकरण की महर्षि अभय कात्यायन-विरचित हिन्दी टीका पूर्ण हुई॥ ७॥

इस प्रकार यहीं पर तीसरे काण्ड की टीका भी सम्पूर्ण हुई॥ ३॥

इस प्रकार अनुष्ठानप्रकाश ग्रन्थ पूर्ण हुआ